श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

आत्मधर्म [४१२]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ वीर-वंदना

२ जिनशासन का हार्द

३ क्रमबद्धपर्याय : अपनी बात

४ वास्तव में भगवान की.....
[समयसार प्रवचन]

५ और कैसा है यह आत्मा ?
[नियमसार प्रवचन]

६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन

७ ज्ञान-गोष्ठी

८ समाचार दर्शन

९ पाठकों के पत्र

१० प्रबंध संपादक की कलम से

भूल सुधार

माह सितम्बर १९७९ के आत्मधर्म के पृष्ठ २ पर ऊपर की तीसरी लाइन में 'ज्ञानी' के स्थान पर 'अज्ञानी' छप गया है। कृपया सुधार कर पढ़ें। —प्रबंध संपादक

आ म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१२] अंक : ४

वीर-वंदना

वंदौं अद्भुतचंद्र वीर-जिन, भवि-चकोर चितहारी।
वंदौं अद्भुतचंद्र०॥
सिद्धारथनृपकुलनभ मंडन, खंडन भ्रमतम भारी।
परमानंद-जलधि विस्तारन, पाप-ताप छयकारी॥
वंदौं अद्भुतचंद्र०॥
उदित निरंतर त्रिभुवन अंतर, कीरति-किरन पसारी।
दोष-मयंक कलंक अटंकित, मोहराहु निरवारी॥
वंदौं अद्भुतचंद्र०॥
कर्मावरन-पयोद अरोधित, बोधित शिवमगचारी।
गणधरादि मुनि उडुगन सेवत, नित पूनमतिथि धारी॥
वंदौं अद्भुतचंद्र०॥
अखिल अलोकाकाश उलंघन, जासु ज्ञान उजियारी।
'दौलत' मनसा-कुमुदनि मोदन, जयो चरम जगतारी॥
वंदौं अद्भुतचंद्र०॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

जिनशासन का हार्द

जिनशासन में किसी भी प्रकार से किसी भी पक्ष से बात लो, किंतु उसका सार तो पराश्रित परिणमन छोड़कर अंतर के ज्ञानानंद स्वभाव की ओर ढ़लना ही है; क्योंकि पराश्रित परिणमन वह संसार का और स्वभावोन्मुख—स्वाश्रित परिणमन वह मोक्ष का कारण है।

किसी भी संयोग में, क्षेत्र में, या काल में जीव स्वयं निश्चयस्वभाव का आश्रय करके परिणमित होता है, वही जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मोक्ष प्राप्त करता है। जो जीव शुद्धस्वभाव का आश्रय नहीं करता और पराश्रित ऐसे व्यवहार का आश्रय करता है वह जीव किसी भी संयोग में, क्षेत्र में, या काल में सम्यग्दर्शनादि को प्राप्त नहीं कर पाता।

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बंधस्तदत्यागात्तत्त्यागाद्बंध एव हि॥१२२॥[1]

यहाँ यही तात्पर्य है कि शुद्धनय त्यागने योग्य नहीं है; क्योंकि उसके अत्याग से बंध नहीं होता और त्याग से बंध ही होता है।

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७१, जुलाई १९५९, पृष्ठ १३२

---

१. समयसार कलश, श्लोक १२२

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | अपनी बात

'क्रमबद्धपर्याय' औरों के लिये एक सिद्धांत हो सकती है, एकांत हो सकती है, अनेकांत हो सकती है, मजाक हो सकती है, राजनीति हो सकती है, पुरुषार्थप्रेरक या पुरुषार्थनाशक हो सकती है, अधिक क्या कहें किसी को कालकूट जहर भी हो सकती है। किसी के लिए कुछ भी हो-पर मेरे लिए वह जीवन है, अमृत है; क्योंकि मेरा वास्तविक जीवन, अमृतमय जीवन, आध्यात्मिक जीवन—इसके ज्ञान, इसकी पकड़ और इसकी आस्था से ही आरंभ हुआ है।

'क्रमबद्धपर्याय' की समझ मेरे जीवन में मोड़ लानेवाली ही नहीं, अपितु उसे आमूलचूल बदल देनेवाली संजीवनी है। मेरी दृढ़ आस्था है कि जिसकी भी समझ में इसका सही स्वरूप आयेगा, यह तथ्य सही रूप से उजागर होगा—उसका जीवन भी आनंदमय, अमृतमय हुए बिना नहीं रहेगा।

यही कारण है कि मैं इसे घर-घर तक ही नहीं, अपितु जन-जन तक पहुँचा देना चाहता हूँ; इसे जन-जन की वस्तु बना देना चाहता हूँ।

इसके संबंध में बिना विचारे की जानेवाली हल्की-फुल्की चर्चा, हँसी-मजाक मुझे स्वीकार नहीं, पसंद भी नहीं है। इसे लौकिक धरातल से कुछ ऊपर उठकर समझना होगा, समझाना होगा। इसके संबंध में सामाजिक राजनीति से कुछ ऊपर उठकर बात करनी होगी।

मेरी समझ में यह कैसे आई—इसकी भी एक कहानी है, इस प्रसंग पर जिसके उल्लेख करने का लोभ संवरण कर पाना मेरे लिये संभव नहीं हो पा रहा है।

बात यों हुई कि हम उत्तरप्रदेश के एक गाँव बबीना केंट (झाँसी) में दुकान करते थे। बात ईस्वी सन् १९५६ के दशहरे के आस-पास की है। मेरे अग्रज पंडित रतनचंदजी शास्त्री दुकान का सामान लेने झाँसी गये थे। वहाँ एक व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया कि जब केवली

भगवान ने जैसा देखा-जाना-कहा है, वैसा ही होगा; उसमें कोई फेर-बदल संभव नहीं है, तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा ? जब हम कुछ कर ही नहीं सकते तो फिर हम कुछ करें ही क्यों ?

प्रश्न ने ही उनके हृदय को झकझोर डाला। वे स्तब्ध रह गये। उसके उत्तर में उन्होंने यद्वा-तद्वा कुछ भी कहकर पांडित्य प्रदर्शन न करके यही कहा—भाई ! तुम बात तो ठीक कहते हो, मैं अभी इसके बारे में कुछ भी नहीं कह सकता, अगले शनिवार को आऊँगा तब बात करूँगा।

वह तो चला गया, पर वे रास्ते भर विचार करते रहे। आते ही कोई और बात किए बिना, मुझसे सीधा वही प्रश्न किया। मैं भी विचार में पड़ गया। परस्पर चर्चा होती रही, पर बात कुछ जमी नहीं।

शाम को प्रवचन में जब मैंने यही चर्चा की तब एक अभ्यासी बाई बोली—इसमें क्या है ? यह तो कानजीस्वामी की क्रमबद्धपर्याय है। उस समय तक हमने कानजीस्वामी का नाम तो सुन रखा था पर क्रमबद्धपर्याय का तो नाम भी नहीं सुना था। अत: जब अधिक जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने मंदिरजी में से 'आत्मधर्म' के वे दो विशेषांक लाकर दिये जिसमें 'क्रमबद्धपर्याय' पर हुए स्वामीजी के तेरह प्रवचन प्रकाशित हुए थे। प्रथम अंक में आठ प्रवचन थे और दूसरे में पाँच। ये अंक ई० सन् ५४-५५ में ही निकले थे। बाद में तो वे ही प्रवचन 'ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव' नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए।

उनको पढ़कर तो हमारे हृदय-कपाट खुल गये। ऐसा लगा कि हमें कोई अपूर्वनिधि मिल गयी है। हम कृतकृत्य से हो गये। फिर क्या था—तभी से गंभीर अध्ययन, मनन, चिंतन चर्चा-वार्ता आरंभ हो गयी। इसका रस कुछ ऐसा लगा कि चढ़ती उम्र के सभी रस फीके-से हो गये। 'क्रमबद्धपर्याय' की धुन में व्यापार का क्रम गड़बड़ा गया। ग्राहक आकर चला जाता क्योंकि उसकी बात पर कोई ध्यान देनेवाला ही न रहा था। उसके जाने पर विचार आता कि इस तरह तो पूरा व्यापार ही चौपट हो जायेगा, पर उसी समय क्रमबद्ध की याद आती और कह उठते—जो क्रमबद्ध में होना होगा, वही तो होगा।

इस तरह आरंभ हुआ अध्ययन-मनन का क्रम चला तो चलता ही रहा। फलस्वरूप निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, कर्ता-कर्म आदि सभी का सही स्वरूप स्पष्ट होता चला गया, कहीं कोई व्यवधान नहीं आया। बाद में स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ भी प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम स्वामीजी के दर्शन तब हुए जब वे १९५७ ई० में शिखरजी की यात्रा पर निकले थे। बबीना पड़ाव पर बिना कार्यक्रम के ही उन्हें सड़क पर बलात् रोक लिया था। वहाँ हमने घंटों पूर्व ही स्टेज बनाकर रखी थी और वहाँ सारी समाज उपस्थित थी। स्वामीजी ने वहाँ सिर्फ पाँच मिनट का मांगलिक प्रवचन किया था।

उन्हीं के साथ हम सब भी सोनागिरि चले गये। तीन दिन तक वहाँ उनके प्रवचनों का लाभ सपरिवार लिया। उनसे सामान्य चर्चा भी की। उसके कुछ दिनों बाद ही चाँदखेड़ी में उनके प्रवचनों का लाभ मिला। उस समय मेरी देव-शास्त्र-गुरु पूजन प्रकाशित ही हुई थी, उसकी जयमाला में क्रमबद्धपर्याय की पोषक कुछ पंक्तियाँ आती हैं। जो इसप्रकार हैं:—

"जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्ता अब तक, सत् का न प्रभो सन्मान किया॥"

मैंने यह अपनी प्रथम प्रकाशित कृति स्वामीजी को समर्पित की थी। उसके समर्पण में लिखा था—

"उन पूज्य श्री कानजीस्वामी के कर-कमलों में सादर समर्पित, जिन्होंने कलिकाल में 'क्रमबद्धपर्याय' का स्वरूप समझाकर हम जैसे पामर प्राणियों पर अनंत उपकार किया है।"

जब मैंने उक्त कृति चाँदखेड़ी में स्वामीजी को समर्पित की तब उन्होंने समर्पण पढ़कर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"तुम क्रमबद्धपर्याय जानते हो?" उसके उत्तर में जब मैंने उत्साहपूर्वक 'हाँ' कहा, तब कहने लगे—सोनगढ़ आना, वहाँ चर्चा करेंगे। उनका हार्दिक आमंत्रण पाकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया।

मैं कोटा तक उनके साथ गया। उनका वहाँ तीन दिन का कार्यक्रम था। उनके प्रवचनों का लाभ लेने के लिए मैं भी वहाँ तीन-चार दिन रहा। वहाँ की विशाल सभा में उनके समक्ष मेरा भी १५ मिनट का व्याख्यान हुआ, जिसमें मैंने अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ की व्याख्या की थी, जिसकी बाद में बहुत सराहना की गई। स्वामीजी ने भी प्रसन्नता व्यक्त की थी।

उसके बाद सन् १९५८ की जुलाई में २० दिन के लिए अनेक आत्मार्थी बंधुओं के साथ हम दोनों सहोदर सोनगढ़ गये।

'क्रमबद्धपर्याय' की बात समझ में आने के पूर्व हमने आचार्य कुंदकुंद का नाम तो सुन रखा था, पर उनका कोई ग्रंथ पढ़ने की बात तो बहुत दूर, देखा भी नहीं था। यद्यपि उस समय कोई उम्र भी नहीं थी, २०-२१ वर्ष के ही थे; पर शास्त्री, न्यायतीर्थ और साहित्यरत्न तो हो ही गये थे। पंडित कहलाते थे, व्याख्यान भी खूब देते थे, लोकप्रिय व्याख्याता थे; पर जिनधर्म के मर्म से अपरिचित ही थे।

करते भी क्या? न तो पाठ्यक्रम में आचार्य कुंदकुंद का कोई ग्रंथ था और न ही कहीं आध्यात्मिक चर्चा का वातावरण ही था। सामाजिक उठा-पटक ही चलती रहती थी, जैन समाज की सभी पत्र-पत्रिकाएँ उसी से भरी रहती थीं। हम भी तो उसी के रसिक थे, हमें भी आध्यात्मिक रुचि कहाँ थी? पिताजी की रुचि से जैनदर्शन पढ़ा था, सो भाषा और परिभाषाओं में पढ़ डाला था, भावात्मकरूप में कुछ भी हाथ नहीं आया था। आरंभ से ही क्षयोपशम विशेष था ही, सो कोई भी व्याख्यान बिना चैलेंज के पूरा नहीं होता था। समझ में शास्त्रों का मर्म तो नहीं, पर मान तो आ ही गया था।

यदि 'क्रमबद्धपर्याय' की बात ध्यान में न आती तो न जाने क्या होता? होता क्या, सबकुछ ऐसे ही चलता रहता और बहुमूल्य मानवभव यों ही चला जाता। पर जाता कैसे जबकि हमारी पर्याय के क्रम में 'क्रमबद्धपर्याय' की बात समझ में आने का काल पक गया था।

इसके बाद तो इसीकारण अनेक सामाजिक उपद्रवों का भी सामना करना पड़ा, शारीरिक व्याधियाँ भी कम नहीं रहीं, पर 'क्रमबद्ध' की श्रद्धा के बल पर आत्मबल कभी टूटा नहीं। 'क्रमबद्धपर्याय' की श्रद्धा एक ऐसी संजीवनी है, जो हर स्थिति में धैर्य को कायम रखती है, शांति प्रदान करती है, कर्तृत्व के अहंकार को तोड़ती है, ज्ञाता-दृष्टा बने रहने की पावन प्रेरणा देती है-अधिक क्या, यों कहिये न, कि जीवन को सफल और सार्थक बना देती है।

विगत तेईस वर्षों से 'क्रमबद्धपर्याय' की श्रद्धा अनवरत कायम रही है, कभी भी एक क्षण को उसके संबंध में चित्त डोला नहीं है। यद्यपि इस बीच चिंतन में, मनन में, अध्ययन में बहुआयामी विकास हुआ है, पर श्रद्धा में कोई अंतर नहीं आया है।

'क्रमबद्धपर्याय' के संबंध में मेरे द्वारा १९७९ आरंभ से ही निरंतर जो कुछ लिखा जा रहा है, वह सब विगत तेईस वर्षों के अध्ययन-मनन-चिंतन का परिणाम है। अतः पाठक

बंधुओं से मेरा एक विनम्र अनुरोध है कि वे इसे मात्र पढ़े ही नहीं, वरन बार-बार पढ़ें, विचार करें, मंथन करें, इसकी गहराई में जावें। इसकी चर्चा भी करें, पर गंभीरता से करे—इसे हँसी-मजाक का विषय न बनावें, बान-बात (Prestige Point) का विषय भी न बनावें।

यदि अभी तक इसका विरोध करते रहे हैं, तो भी इसकी स्वीकृति में हार का अनुभव न करें, क्योंकि इसकी स्वीकृति में हार में भी जीत है। इसकी सहज स्वीकृति में जीत ही जीत है, हार है ही नहीं।

इसके निर्णय में सर्वज्ञता का निर्णय समाहित है, सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप का निर्णय समाहित है। मुक्ति का मार्ग आरंभ करने के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, वह सब कुछ इसकी श्रद्धा में आ जाता है।

विगत तेईस वर्षों से सैकड़ों बार इस पर व्याख्यान किये हैं, उन्हें लिपिबद्ध करने के आग्रह भी श्रोताओं के बहुत रहे हैं, पर अभी तक यह सब लिखा नहीं जा सका था। 'आत्मधर्म' के संपादकीय लिखने की अनिवार्यता ने इसे लिखवा डाला है।

यदि एक भी आत्मार्थी इससे 'क्रमबद्धपर्याय' का सही स्वरूप समझ सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

इसके लिखने में मैं पूर्णत: सजग रहा हूँ। सर्वप्रथम यह निबंध जनवरी १९७९ में १६ पृष्ठों का (२०० प्रतियों में) प्रकाशित किया था। उसे एलाचार्य मुनि श्री विद्यानंदजी के सान्निध्य में जयपुर में होनेवाले सेमिनार में प्रस्तुत किया था। उक्त सेमिनार में समागत सभी विद्वानों को तो दिया ही था, और भी अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों की सेवा में निम्नानुसार निवेदन करते हुए भेजा था:—

"यह निबंध अभी अपूर्ण है। आवश्यक संशोधन और परिमार्जन भी शेष है। शीघ्र प्रकाश्य इस निबंध के संदर्भ में विद्वानों की महत्त्वपूर्ण सलाह, सुझाव, सूचना सानुरोध अपेक्षित है। हम विश्वास दिलाते हैं कि प्रकाशन के पूर्व प्राप्त सुझावों पर गंभीरतापूर्वक विचार कर आवश्यक संशोधन अवश्य किए जावेंगे।"

परिणामस्वरूप अनेक विद्वानों के पत्र आये, जिनमें कुछ सुझाव भी थे, बाकी अनुशंसा ही अधिक थी।

उन पर गंभीरतापूर्वक विचार कर इसे आगे बढ़ाया गया। बीच में भी कुछ परिवर्द्धन

हुआ। इसप्रकार यह २५ पृष्ठ का हो गया। जिसे दुबारा छपाकर फिर एक बार विद्वानों के पास भेजा गया। उसमें भी निम्नानुसार अनुरोध किया गया था:—

"यह निबंध आपकी (विद्वानों की) सेवा में आवश्यक सुझाव व सलाह के लिए लभग दो माह पूर्व भेजा गया था, तब यह १६ पृष्ठ का था। अब यह परिवर्द्धित होकर इस रूप में आ गया है; पर अभी भी अपूर्ण है। अभी भी हम आपके महत्त्वपूर्ण सुझावों की अपेक्षा रखते हैं। वैसे यह अभी आत्मधर्म में संपादकीय के रूप में प्रकाशित हो ही रहा है, बाद में इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करने की योजना है। जैसा कि पहिले निवेदन किया गया था—हम विश्वास दिलाते हैं कि पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व प्राप्त सुझावों पर गंभीरतापूर्वक विचार कर आवश्यक संशोधन, परिवर्द्धन अवश्य किये जावेंगे।"

आत्मधर्म के पाठकों से भी अनेक पत्र प्राप्त हुए। सबको ध्यान में रखते हुए इसे विस्तार दिया गया। चूंकि इस विषय को इस युग में पूज्य श्री कानजीस्वामी ने उठाया था—अत: उनके ताजे विचार भी पाठकों तक पहुँचे—इस भावना से उनसे इस संदर्भ में एक इंटरव्यू भी लिया गया, जो कि आत्मधर्म के गत अंक में प्रकाशित हो चुका है।

यह वर्ष मेरे लिये 'क्रमबद्धपर्याय' के रूप में आया। आत्मधर्म में संपादकियों के रूप में लगातार इसकी चर्चा करने के कारण इस बीच जहाँ भी प्रवचनार्थ गया, जनता के आग्रह से 'क्रमबद्धपर्याय' पर ही प्रवचन करने पड़े। श्री सम्मेदशिखरजी, बम्बई, राजकोट, सतना, अजमेर—यहाँ तक सोनगढ़ शिविर में भी लगातार दश दिन तक क्रमबद्धपर्याय पर प्रवचन चले। जयपुर में तो पूरे वर्ष यह विषय चर्चा का विषय बना रहा है। जिज्ञासु श्रोताओं और मेधावी छात्रों के आग्रह पर इस पर अनेक प्रवचन भी किये हैं। उनसे चर्चाएँ भी खूब हुईं।

'क्रमबद्धमय' वातावरण बना रहने से भी काफी चिंतन इसके संदर्भ में चलता रहा। वह बहुत-कुछ इसमें आ गया है। अभी और भी बहुत-कुछ शेष है, जो आगामी अंकों में प्रश्नोत्तरों के रूप में आवेगा।

इसप्रकार इसे सर्वांग बनाने का भरपूर उपक्रम किया जा रहा है। फिर भी यदि कोई कमी रह गयी हो तो सभी जिज्ञासु पाठकों एवं सम्माननीय विद्वानों से सानुरोध आग्रह है कि वे उस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें। वर्षांत तक इसके पुस्तकाकार प्रकाशन की योजना है,

उसके पूर्व प्राप्त सुझावों का उपयोग इसके परिष्कृत करने में अवश्य किया जावेगा। हम नहीं चाहते कि इसमें कोई कमी रह जावे।

जैनदर्शन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गंभीर इस विषय को निर्विवाद रूप से सर्वांग प्रस्तुत करने की भावना से ही यह अनुरोध किया गया है। आशा है विद्वज्जन इस पर ध्यान देंगे।

अंत में इस पवित्र भावना के साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ कि सारा जगत 'क्रमबद्धपर्याय' के सही स्वरूप को समझकर स्वभाव-सन्मुख होकर अनंत सुखी हो।

अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती

ज्ञानियों को ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को छोड़कर अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती, अतः परमात्मा को जाननेवाले ज्ञानियों का मन बाह्य विषयों में नहीं रमता। और जिन्हें राग की रुचि है, उनका मन परमानंद देनेवाले परमात्मा में नहीं लगता; वे जीव कदाचित् बाह्य त्याग कर संयम धारें, तो भी राग की रुचि वाली अंतरंग अभिलाषा छूटी न होने से षट्काय जीवों के घातक ही हैं। बाह्य विषयों को छोड़ते हुए भी अंतरंग में छूटे न होने से विषयसेवक ही हैं। — **पूज्य स्वामीजी**

वास्तव में भगवान की स्तुति क्या है?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की इकतीसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥३१॥

जो इंद्रियों को जीतकर, आत्मा को ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक जानता है उसे, जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।

इस गाथा में आचार्यदेव ने अरहंत भगवान की परमार्थ स्तुति का स्वरूप बताया है। तीसवीं गाथा में स्पष्ट किया था कि देह का वर्णन करने से आत्मा की स्तुति नहीं होती क्योंकि देह और आत्मा भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। इस जीव ने अनादि काल से देह को ही आत्मा मानकर देह की स्तुति अनंत बार की, परंतु अन्य द्रव्य से भिन्न ज्ञानस्वभावी आत्मा को जानकर अरहंत भगवान की सच्ची स्तुति आज तक नहीं की। अतः यहाँ आचार्यदेव ज्ञेयज्ञायक संकरदोष का परिहार करते हुए परमार्थस्तुति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

यह गाथा अत्यंत अलौकिक है। भगवान का यथार्थ गुण-गान किसे कहते हैं? द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इंद्रियों के विषयों का लक्ष्य छोड़कर आत्मा में स्थिर होना ही भगवान का सच्चा गुण-गान है।

यहाँ विधि-निषेध द्वारा धर्म का स्वरूप बताया जा रहा है। अपना आत्मा ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक है, पृथक् है, अर्थात् अपने में परिपूर्ण है। अन्य द्रव्यों का लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य का लक्ष्य करना ही अरहंत भगवान की सच्ची स्तुति है।

'णाणसहावाधियं' अर्थात् ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों से अलग—ऐसा कहकर द्रव्यदृष्टि कराई है। ज्ञानानंदस्वभावी आत्मद्रव्य की दृष्टि करने से इंद्रियों का अवलंबन छूट जाता है, मनसंबंधी बुद्धिपूर्वक विकल्प भी छूट जाते हैं और परद्रव्यों का लक्ष्य भी छूट जाता

है। इसप्रकार द्रव्यदृष्टि होने पर, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इंद्रियों के विषयों को जीतकर केवली भगवान की परमार्थस्तुति होती है।

सर्वज्ञ भगवान की वास्तविक स्तुति करने के लिए सर्वप्रथम सर्वज्ञ के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिये। सर्वज्ञ की सत्ता की स्वीकृति राग या अल्पज्ञ पर्याय के आश्रय से नहीं, अपितु पूर्णज्ञानस्वभाव के आश्रय से होती है। यद्यपि सर्वज्ञता का निर्णय करनेवाली पर्याय स्वयं अल्पज्ञ है, परंतु उसमें अल्पज्ञता का नहीं, सर्वज्ञस्वभाव का अवलंबन है। सर्वज्ञ के निर्णय में क्रमबद्धपर्याय का निर्णय आ जाता है। सर्वज्ञ का निर्णय कहो, क्रमबद्धपर्याय का निर्णय कहो, या सर्वज्ञ की परमार्थ स्तुति कहो—एक ही बात है। प्रवचनसार में कहा भी है कि जो जीव अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसका मोह नष्ट हो जाता है।

जीवादि छह द्रव्यों का निवास-स्थान यह संपूर्ण लोक ज्ञेय है, देव-शास्त्र-गुरु भी ज्ञेय हैं; परंतु ज्ञेय के कारण ज्ञान नहीं होता। यदि ज्ञेय से ज्ञान हो तो लोकालोक तो अनादि से हैं, अतः उन्हें जाननेवाली केवलज्ञानरूप अवस्था भी अनादि से होना चाहिये? परंतु ऐसा नहीं हैं। आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाला केवलज्ञान अपनी योग्यता से लोकालोक को जानता है। ज्ञेय के कारण ज्ञान उत्पन्न होता है—ऐसा मानना ज्ञेय-ज्ञायक संकरदोष है।

कुछ लोग समयसार की इस गाथा के आधार से निश्चय का एकांत करके मूर्ति-पूजा का निषेघ करते हैं, परंतु उन्हें व्यवहार की ही खबर नहीं तो निश्चय की क्या खबर होगी? जैसे—लोक में खुशी के प्रसंग में पुत्र अपने पिता को याद करता है, उसीप्रकार निश्चय का भानवाला धर्मी जीव भगवान को याद किये बिना नहीं रहता।

भगवान कौन है और मैं स्वयं कौन हूँ? यह जाने बिना निश्चय या व्यवहार कोई भी स्तुति नहीं होती। शुभभावरूप मंदकषाय करे तो मात्र पुण्यबंध होगा, किंतु आत्मा की पहिचान बिना मात्र शुभराग को व्यवहारस्तुति नहीं कहा जा सकता। यहाँ जगत के पापभावों को छोड़कर भगवान की स्तुति, वंदन, पूजादि करने का निषेध नहीं है; परंतु शुभ में धर्म मानकर संतुष्ट होने का निषेध करके आत्मा का अनुभव करने की प्रेरणा दी जा रही है, क्योंकि आत्मा को पहिचाने बिना अनंतबार शुभभाव किये तथापि भव का अंत नहीं आया। शुभभाव तो पूर्व में अनंतबार किया है परंतु धर्म में उसकी मुख्यता नहीं है; अनंतकाल से आज तक कभी नहीं किया ऐसे आत्मज्ञान की ही मुख्यता है।

यहाँ निश्चय एवं व्यवहारस्तुति का स्वरूप स्पष्ट किया जा रहा है। राग से भिन्न ज्ञानस्वभाव में स्थिर होना निश्चयस्तुति है, किंतु ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होने पर भी देव-शास्त्र-गुरु के बहुमानस्वरूप रागात्मक वृत्ति को व्यवहार से स्तुति कहते हैं। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों को देव-शास्त्र-गुरु के प्रति राग उत्पन्न होता है, परंतु ज्ञानी के अभिप्राय में उस वृत्ति का निषेध वर्तता है अर्थात् वह उसे धर्म नहीं मानता और अज्ञानी उस राग को धर्म मानता है, इसलिये उसके शुभराग को व्यवहार से भी स्तुति नहीं कहते।

यह ध्यान रखना चाहिये कि मात्र शुभराग को व्यवहारस्तुति नहीं कहते, परंतु रागरहित स्वभाव की श्रद्धा के बल से राग का निषेध वर्तने की भूमिका में होनेवाले राग को व्यवहार कहते हैं। अज्ञानी को रागरहित स्वभाव का भान नहीं है, इसलिये उसे सच्चा व्यवहार भी नहीं होता। ज्ञानस्वभावरूप निश्चय की प्रतीति बिना पर की भक्ति, अज्ञान और राग की ही भक्ति है; वह भगवान की भक्ति नहीं है।

ज्ञानी साधक को ही सच्ची स्तुति होती है। जिसे आत्मप्रतीति नहीं है, उसे सच्ची स्तुति नहीं हो सकती तथा जो आत्मप्रतीति करके पूर्णदशा को प्राप्त हुए हैं, उन्हें स्तुति करने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि वे पूर्ण दशा को प्राप्त हो गये हैं, उससे ऊँची ऐसी कोई दशा नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिये वे स्तुति करें। जिसने पूर्ण स्वरूप की प्रतीति तो की है, किंतु पूर्णदशा प्रगट नहीं है ऐसे साधक जीव ही स्तुति करते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में जघन्य स्तुति प्रगट होती है तथा बारहवें गुणस्थान में उत्कृष्ट स्तुति होती है तथा बीच के गुणस्थान में मध्यम स्तुति है। अज्ञानी को स्वभाव का भान न होने से सच्ची स्तुति नहीं होती।

यहाँ, इंद्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव से आत्मा को अधिक मानना परमार्थ स्तुति है, ऐसा कहा है। दुनिया जिसे इंद्रिय-जय कहती है, उसकी बात यहाँ नहीं है। वास्तव में द्रव्येन्द्रियाँ तो पर हैं, आत्मा उन्हें वश में नहीं कर सकता। आहार कम करें तो इंद्रियों पर विजय हो जाएगी—ऐसा मानना मूढ़ता है। इंद्रियों का लक्ष्य छोड़कर, अतीन्द्रिय आत्मा का लक्ष्य करना ही वास्तविक इंद्रिय-जय है। शास्त्र में अनशन, अवमौदर्य आदि तप का वर्णन निमित्त की अपेक्षा किया गया है। स्वभाव का भान होने पर भोजनादि संबंधी राग सहज छूट जाने से बाह्य भोजनादि निमित्तों पर से भी लक्ष्य सहज छूट जाता है।

कुछ अज्ञानी जीव, मुझे स्त्री का सौंदर्य न दिख जाए, इसलिये आँखें फोड़ लेते हैं, परंतु

इससे इंद्रिय-जय नहीं होता। 'मैं जड़इंद्रियरूप, भावइंद्रियरूप तथा इंद्रियों के विषयरूप नहीं हूँ, मैं तो अतीन्द्रिय ज्ञायकरूप हूँ'—ऐसी अनुभूति ही वास्तविक इंद्रिय-जय है।

इंद्रियों का लक्ष्य छोड़कर ज्ञानस्वभाव का लक्ष्य करना—यही अन्य द्रव्यों से अधिकपना है। आचार्यदेव ने इंद्रिय शब्द के तीन अर्थ किए हैं। शरीररूप जड़इंद्रिय, खंड-खंड ज्ञानरूप भावेंद्रिय और इंद्रियों के विषय।

सर्वप्रथम जड़इंद्रियों की बात चलती है। स्पर्शनादि पाँच इंद्रियाँ स्थूल हैं, जड़ हैं, शरीररूप हैं। अज्ञानी जीव अनादि से बंधपर्याय के वश होकर अपना अस्तित्व शरीररूप ही मानता है। मैं देह से अत्यंत भिन्न ज्ञानानंद स्वभावी हूँ, ऐसा भेदविज्ञान अज्ञानी को नहीं है अर्थात् उसे स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है, और यह तो भगवान की अभक्ति है। मैं शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हूँ, पर-जीवों की दया करता हूँ, इंद्रियों से मुझे ज्ञान होता है, आँख से मैं देखता हूँ, कान ठीक रहे तो सुनाई ठीक पड़ता है इत्यादि मान्यता वाले जीवों को स्व-पर विभाग अस्त हो गया है।

द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों और पर-वस्तुओं से अपने को पृथक् अनुभव करना ही उन्हें जीतना है। द्रव्येन्द्रियों को जीतने की विधि बताते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—निर्मल भेद-अभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त अंतरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलंबन के बल से अपने को द्रव्येन्द्रियों से अलग अनुभव करना ही द्रव्येन्द्रियों को जीतना है।

चैतन्यस्वभाव अंतरंग में प्रगट ही है। ज्ञानस्वभाव कभी ढँकता नहीं है। यद्यपि वर्तमान अवस्था में विकार है, परंतु ज्ञान का स्वभाव तो विकार से भिन्न रहकर उसे जानने का है। जैसे किसी हीरे को सात डिब्बियों के बीच रख दिया जाये तो यह कहा जाता है कि हीरा ढँका है, परंतु उसका ज्ञान नहीं ढँकता। ज्ञान में तो हीरा स्पष्ट झिलमिला रहा है, हीरा संबंधी ज्ञान तो प्रगट ही है। उसीप्रकार आत्मा-शरीर, कर्म तथा विकार के बीच में पड़ा है फिर भी शरीर, कर्म तथा विकार से भिन्न आत्मा का ज्ञान स्पष्ट रूप से हो सकता है। शरीरादि को जाननेवाला ज्ञानस्वभाव प्रगट ही है।

पहले २३-२५वीं गाथा में कहा था कि वेगपूर्वक बहते हुए अस्वभाव-भावों के संयोगवश अज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्य को अपना अनुभव करता है, किंतु उसे अपना चैतन्यस्वभाव अनुभव में नहीं आता। यहाँ अस्वभाव-भावों को वेगपूर्वक बहता हुआ

विशेषण दिया है। रागादि विकारीभाव एवं क्षयोपशम ज्ञान प्रतिसमय बदलते रहते हैं। अज्ञानी अपने को रागादि का कर्तारूप अनुभव करता है। रागादि का कर्ता होनेवाला जीव वीतरागी भगवान की स्तुति कैसे कर सकता है ?

अंतरंग में प्रगट चैतन्यस्वभाव के अवलंबन से ही इंद्रियों द्वारा भेद-विज्ञान होता है। ज्ञानी अपने से भिन्न इंद्रियों को जान लेता है, परंतु उनमें तन्मय नहीं होता। अज्ञानी अपने ज्ञान को शरीर और रागादि से ढंका हुआ मानता है; परंतु मेरा ज्ञान ढँक गया है, यह किसने जाना ? ऐसा जाननेवाला ज्ञान प्रगट है या अप्रगट ? अप्रगट ज्ञान तो जान ही नहीं सकता। अतः जाननेवाला ज्ञान प्रगट ही है, चैतन्यस्वभाव कभी ढँकता ही नहीं है। ज्ञान और इंद्रियों के भेदज्ञान द्वारा ही इंद्रिय-जय होता है और यही केवली भगवान की परमार्थ स्तुति है।

स्तुति से आशय, जिसकी स्तुति करना है, अपने में उसी जैसा अंश प्रगट करने से ही है। द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों और इंद्रिय के विषयों से भिन्न आत्मा के अवलंबन से प्रगट शुद्धता ही सच्ची स्तुति है। आत्मा का स्वरूप जाने बिना भगवान की सच्ची स्तुति नहीं हो सकती। जिस भाव से भगवान, भगवान बने उस भाव की पहिचान करके अपने में उसका अंश प्रगट करना ही सच्ची भक्ति है। जिसे स्वभाव की प्रतीति नहीं है, वह निश्चय-स्तुति नहीं कर सकता तथा जिन्हें स्वभाव की प्रतीतिपूर्वक पूर्णदशा प्रगट हो गई है, उन्हें स्तुति करने की आवश्यकता ही नहीं है। इसलिए जिन्हें स्वभाव की प्रतीति तो हो गई परंतु पूर्णता प्रगट नहीं हुई—ऐसे ज्ञानी पुरुषों को ही सच्ची स्तुति होती है। स्वभाव की श्रद्धा बिना निश्चय-स्तुति या व्यवहार-स्तुति नहीं होती। आत्मा के अनुभव बिना मात्र शुभराग को व्यवहार-स्तुति नहीं कहा जाता।

यद्यपि निश्चयभक्ति का संबंध अपने आत्मा के साथ है, किंतु सर्वप्रथम संसार की ओर के तीव्र अशुभराग से छूटकर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के परिचयपूर्वक उनकी भक्ति का शुभराग होता है। सच्चे देवादि की पहिचान और भक्ति का उल्लास हुए बिना किसी को अपने आत्मा की निश्चयभक्ति प्रगट नहीं होती; और देव-शास्त्र-गुरु के प्रति राग से भी निश्चयभक्ति प्रगट नहीं होती। निश्चयभक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए पहले संसार की रुचि और कुगुरु-कुदेव-कुशास्त्र की मान्यता के अशुभ भावों से छूटकर राग की दिशा सच्चे देवादि की ओर होती है। उसके बाद रागरहित शुद्ध अभेद स्वभाव की प्रतीतिपूर्वक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है; और यही वीतरागी सर्वज्ञ भगवान की सच्ची स्तुति है।

यद्यपि प्रथम भूमिका में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का शुभराग अवश्य होता है तथापि वह सम्यग्दर्शन में सहायक नहीं है, क्योंकि आत्मा रागरहित ज्ञानस्वभावी अमूर्तिक तत्त्व है। रागरहित तत्त्व की अनुभूति में शुभराग सहायक कैसे होगा? वह बाधक ही है। इसलिये शुभराग से भगवान की निश्चयस्तुति नहीं हो सकती।

जहाँ यह समझाया कि सच्चे देवादि के प्रति होनेवाले राग से सम्यग्दर्शन नहीं होता, वहाँ यदि कोई देव-शास्त्र-गुरु का परिचय और उनकी भक्ति आदि करना ही छोड़ दे तो वह वस्तुस्वरूप को ही नहीं समझा। प्रथम भूमिका में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का परिचय और उनकी श्रद्धा का शुभ विकल्प आये बिना नहीं रहता। यदि शुभराग का अस्तित्व स्वीकार न करे तो उसे दूर करके स्वभाव का लक्ष्य करने का प्रयत्न कैसे करेगा? यद्यपि शुभराग से स्वभाव का लक्ष्य नहीं होता, परंतु स्वभाव के लक्ष्य के प्रयत्न की भूमिका में वह राग अवश्य आ जाता है। यदि उस राग का ज्ञान न किया जाये तो वह ज्ञान मिथ्या है और यदि उसे सम्यग्दर्शन में सहायक मान लिया जाये तो श्रद्धा मिथ्या है। शुभराग को जाने परंतु उसे सम्यग्दर्शन का कारण न माने तो ज्ञान और श्रद्धा दोनों सच्चे होते हैं।

आत्मा अनंतगुणों का अखंड पिंडरूप निर्विकारी तत्त्व है तथा उसे जाननेवाला और श्रद्धा में लानेवाला सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन भी विकाररहित है। विकार कभी निर्विकार का कारण नहीं बनता, क्योंकि कारण और कार्य एक ही जाति के होते हैं।

यहाँ बारंबार कहा जा रहा है कि शुभराग आत्मा के निर्विकारी स्वरूप की प्राप्ति में सहायक नहीं है, इससे पुण्यभाव छोड़कर पाप भावों में लगने का पोषण नहीं समझना चाहिये। हिंसा, झूठ, चोरी इत्यादि का भाव पाप-भाव है तथा पर-जीव की दया, दान, सेवा इत्यादि का भाव लौकिक पुण्य है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पहिचानपूर्वक उनकी भक्ति इत्यादि का शुभभाव अलौकिक पुण्य है, किंतु यह भी धर्म का सच्चा कारण नहीं है।

सभी संसारी जीवों को अनादि से द्रव्येन्द्रियों के साथ एकक्षेत्रावगाही संबंध है। शरीर-परिणाम को प्राप्त ऐसी द्रव्येन्द्रियाँ आत्मा के साथ ऐसी एकमेक हो रही है कि उनमें परस्पर भेद दिखाई नहीं देता इसलिये अज्ञानी को स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है अर्थात् उसे देह और आत्मा की भिन्नता की खबर नहीं है। भेदज्ञान द्वारा अंतरंग में प्रगट चैतन्य स्वभाव के अवलंबन से द्रव्येन्द्रिय से भिन्न अतीन्द्रिय आत्मा का अनुभव होता है, और यही केवली भगवान की सच्ची स्तुति है।

'अनादि-अमर्यादरूप बंधपर्याय के वश'—ऐसा कहकर यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि सम्यग्दर्शन के पूर्व भी बंधपर्याय का ज्ञान होना आवश्यक है। बंधपर्याय के निर्णयपूर्वक ही उसे दूर करने का प्रयत्न होता है। बंधपर्याय अनादि काल से है, किंतु मेरा स्वरूप बंधरूप नहीं हुआ, इसलिये बंधन दूर हो सकता है।

'बंधपर्याय के वश' अर्थात् पर्याय में बंध है, उस बंधपर्याय को अपना मानना भूल है। यह भूल भी मैंने स्वयं की है, कर्म या किसी अन्य की प्रेरणा से नहीं हुई—ऐसा समझने वाले जीव को व्यवहारशुद्धि होती है। जब जीव इतना समझता है तब वह गृहीत मिथ्यात्व से छूटकर सम्यक्त्व प्रगट करने के उपाय के सन्मुख होता है।

शरीर-परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रियों को चैतन्यस्वभाव के अवलंबन से जीता जाता है। शरीर-परिणाम को प्राप्त—ऐसा कहकर जड़वस्तु और उसका परिणमन दोनों सिद्ध किये हैं। जड़ परमाणु अपनी स्वतंत्र योग्यता से इंद्रियरूप परिणमित होते हैं। मैं इंद्रियों और उनकी सहायता से होनेवाले रागमिश्रित ज्ञान से भिन्न चैतन्यस्वभावी हूँ—ऐसा निर्णय करके अपने ज्ञान को इंद्रियों से हटाने पर परमाणुओं की इंद्रियरूप अवस्था का भी व्यय हो जायेगा। अपने ज्ञान को स्वसन्मुख करने से इंद्रियों का निमित्त भाव भी छूट जायेगा।

इसप्रकार द्रव्येन्द्रियों को जीतने की बात कहकर अब भावेन्द्रियों को जीतने की विधि बताते हैं। [शेष अगले अंक में]

हस्तिनापुर में जैन मेला : डॉ० भारिल्ल के प्रवचन

दिनांक २८ अक्टूबर से ४ नवम्बर १९७९ तक क्षेत्र पर मेले का आयोजन किया जा रहा है। मेले में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त तीनों समय शास्त्र प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा को विशेष मुख्यता दी गई है। सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचनों का भी लाभ प्राप्त होगा। क्षेत्र पर आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था की गई है। पधारकर धर्मलाभ लें।

— जयंतीप्रसाद जैन

और कैसा है यह आत्मा?

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की ४४वीं गाथा एवं उसमें समागत पदों पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा॥४४॥

आत्मा निर्ग्रंथ, निराग, निःशल्य, सर्वदोषविमुक्त, निष्काम, निःक्रोध, निर्मान और निर्मद है।

इस गाथा में भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है।

(१) शुद्धजीव बाह्य-अभ्यंतर चौबीस परिग्रहों से रहित है, इसलिये निर्ग्रंथ है।

"शुद्धजीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यंतर चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रंथ है।"

यहाँ जीव को शुद्धजीवास्तिकाय कहा है। असंख्यप्रदेशात्मक शुद्धजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, ध्रुवस्वभाव कहो—सब एक ही है। जिस क्षेत्र में से अथवा जिसकी एकाग्रता से सम्यग्दर्शन पर्याय प्रकट होती है—वह असंख्यप्रदेशी जीव है, उसमें परिग्रह नहीं है। बाह्य-अभ्यंतर चौबीस परिग्रह प्रथम अस्तित्व में थे और बाद में उन्हें त्यागा—ऐसा यहाँ अर्थ नहीं है। परिग्रह का त्याग करना तो पर्याय में होता है। यहाँ पर्याय को गौण करके शुद्धजीव की बात चलती है। धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्रादि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह शुद्ध आत्मा में नहीं है। राग-द्वेषवाली पर्याय में वे पदार्थ निमित्तरूप से होते हैं, किंतु यहाँ तो शुद्धस्वभाव की बात है। शुद्धस्वभाव में बाह्य परिग्रह के निमित्तपने का अभाव है।

पुनश्च—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा और त्रिवेद मिलाकर चौदह अभ्यंतर परिग्रह संसारदशा में एकसमय की पर्याय में हैं—शुद्धस्वभाव में वे नहीं हैं। ऐसे परिग्रहरहित होने से शुद्धजीव निर्ग्रंथ है। यहाँ निर्ग्रंथ अर्थात् मुनिदशा—ऐसा अर्थ नहीं है, किंतु शुद्धजीव त्रिकाल निर्ग्रंथस्वरूप है—उसकी बात

है। इसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रकट होकर पर्याय में निर्ग्रंथता प्राप्त होती है और शरीर में भी निर्ग्रंथता-नग्नदशा शरीर के कारण हो जाती है।

(२) आत्मा में सकल मोह-राग-द्वेष का अभाव है, इसलिये आत्मा निराग है।

"सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण आत्मा निराग है।"

आत्मा की संसारदशा में मोह-राग-द्वेष के परिणाम पर्याय में होते हैं, उन्हें चेतनकर्म कहा है—कारण कि आत्मा वैसे परिणाम स्वयं करता है, कोई परपदार्थ या निमित्त नहीं कराता। जो जीव राग-द्वेष करता है वहाँ कर्म, शरीरादि को निमित्त कहा जाता है; परंतु त्रिकालस्वभाव में वैसा संबंध नहीं है। यहाँ तो शुद्धस्वभाव में मिथ्यात्व, राग-द्वेष नहीं हैं, इसलिये आत्मा निराग है। ऐसे आत्मा की श्रद्धा करना वह धर्म का कारण है।

(३) शुद्ध आत्मा तीन शल्यों से रहित है, इसलिये निःशल्य है।

"निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण आत्मा निःशल्य है।"

कुछ पुण्यभाव करके देवगति अथवा कोई विशेष पदवी माँगना वह निदानशल्य है। अपने स्वरूप में आड़ मारना—दंभ करना वह मायाशल्य है। आत्मा के स्वरूप से विपरीत मान्यता वह मिथ्यात्वशल्य है। यह शल्यें आत्मा की एकसमय की पर्याय में होती हैं, परंतु शुद्ध स्वभाव में नहीं हैं—इसलिये आत्मा निःशल्य है और उसे भजना वह धर्म है।

(४) शुद्धात्मा में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का अभाव है, अतः वह सर्वदोषविमुक्त है।

"शुद्धनिश्चयनय से शुद्धजीवास्तिकाय के द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने के कारण वह सर्वदोषविमुक्त है।"

ज्ञानावरणी आदि द्रव्यकर्म जड़ हैं; शरीर, मन, वाणी आदि नोकर्म हैं; राग-द्वेष के परिणाम भावकर्म हैं। संसारदशा में पर्याय में भावकर्म का द्रव्यकर्म और नोकर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। व्यवहारनय एकसमय की पर्याय का ज्ञान कराता है, वह जानने के लिये है, किंतु आदरणीय नहीं। सच्ची दृष्टि अर्थात् त्रिकाल दृष्टि से देखा जावे तो शुद्ध आत्मा में द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म का अभाव है, अतः आत्मा सर्वदोषविमुक्त है। पर्याय में दोष है

और स्वभाव में नहीं है—इसप्रकार अस्ति-नास्ति का यथार्थ ज्ञान हो जाता है और ऐसे स्वभाव का आश्रय लेने पर पर्याय का दोष भी टल जाता है।

(५) मैं शुद्धकारणपरमात्मा हूँ, ऐसी वांछा भी शुद्धस्वभाव में नहीं, अतः आत्मा निष्काम है।

''शुद्धनिश्चयनय से निजपरमतत्त्व की भी वांछा नहीं होने से आत्मा निष्काम है।''

परपदार्थों की वांछा करना, निमित्त की, देव-शास्त्र-गुरु की, व्यवहाररत्नत्रय की इच्छा भी राग है—वह पर्याय में है, किंतु शुद्धस्वभाव में नहीं। पुनश्च, त्रिकालस्वभाव के आश्रय से निर्मलरत्नत्रय प्रकट हो—ऐसी वांछा भी स्वभाव में नहीं है; परंतु यहाँ तो उससे भी आगे कहते हैं कि—मैं शुद्धकारणपरमात्मा हूँ, मेरे आश्रय से धर्मदशा प्रकट होती है, ऐसी परमतत्त्व की वांछा भी राग है, यह वांछा पर्याय में होती है। यदि शुद्धदृष्टि से देखा जावे तो परमतत्त्व की वांछा परमतत्त्व में नहीं है। यदि स्वरूप में ऐसी इच्छा हो तो स्वरूप उस इच्छा से रहित नहीं हो सकता।

निजतत्त्व को ग्रहण करूँ—यह विकल्प भी राग है। परवस्तु अथवा देव-गुरु की तो बात ही नहीं, परंतु अपने तत्त्व को अंगीकार करूँ—यह विकल्प भी राग है, और इससे आत्मा प्राप्त हो सके—ऐसा है नहीं। अहो! कितनी सरस बात की है। जगत के जीवों को प्रशस्त-राग गले पड़ गया है, किंतु यहाँ तो अत्यंत सूक्ष्म चर्चा करते हैं। परवस्तु को त्यागने की तो बात ही नहीं, किंतु स्वयं शुद्ध आत्मा है—ऐसा विकल्प भी शुद्ध आत्मा में नहीं है। परवस्तु का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं तथा शुद्धस्वभाव में राग का ग्रहण-त्याग भी नहीं है। शुद्धस्वभाव वांछारहित है। जो जीव ऐसा मानता है कि मैं राग को ग्रहण करता हूँ अथवा छोड़ता हूँ, उसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर है। क्या शुभराग को छोड़ना है? वर्तमान में जो शुभराग हुआ उसे कैसे छोड़ा जावे? और भविष्य का राग तो पर्याय में भी नहीं और द्रव्य में भी नहीं—उसका क्या छोड़ना? इसप्रकार राग को ग्रहण करूँ या छोड़ूँ—ऐसा कारणपरमात्मा में नहीं है। कारणपरमात्मा के अस्तिस्वभाव का अवलंबन लेने पर विकल्प का, राग का, अथवा वांछा का अभाव हो जाता है—इसलिये आत्मा निष्काम है।

(६) समस्त रागपरिणति का शुद्धस्वभाव में अभाव है, अतः आत्मा निःक्रोध है।

''निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्य-परिणति का अभाव होने से आत्मा निःक्रोध है।''

देव-शास्त्र-गुरु के प्रति राग है वह प्रशस्त है और संसार का राग अप्रशस्त है। ऐसे विकार की परिणति छोड़ना—ऐसा अरुचिभाव वह द्वेष है। ऐसा द्वेष एकसमय की पर्याय में है, परंतु द्रव्यदृष्टि से देखने पर ऐसा द्वेष शुद्धस्वभाव में नहीं है। शुद्धस्वभाव में समस्त परद्रव्य-परिणति का अभाव वर्तता है। परवस्तु के त्याग की तो बात ही नहीं, किंतु राग को छोड़ूँ—ऐसा भी वस्तु में नहीं है। वस्तुस्वभाव का लक्ष होने पर विकार उत्पन्न ही नहीं होता, तब राग छोड़ा—ऐसा कहने में आता है। परमशुद्धतत्त्व को ग्रहण करूँ—ऐसा राग स्वभाव में नहीं है, यह बात निष्काम के प्रकरण में आई थी। और राग की वृत्ति को छोड़ूँ—ऐसा द्वेष स्वभाव में नहीं है, यह बात निःक्रोध में आई है।

शुद्धस्वभाव निश्चयनय का विषय है और उसके आश्रय से विकार का अभाव होकर जो एकाग्रता प्रकट होती है, वह व्यवहारनय का विषय है।

अज्ञानी जीव चित्त-निरोध बाह्य से करना चाहते हैं किंतु बाह्यवस्तु से या शरीर की क्रिया से चित्त का निरोध नहीं होता है। मन तो जड़ है और उसके लक्ष से होनेवाला राग वह विकार है—इन दोनों का आत्मा में अभाव है। आत्मस्वभाव राग-द्वेषरहित है, इसप्रकार उसकी अस्ति के बल से राग का अभाव होने पर चित्त का निरोध हो जाता है। अपना शुद्धात्मा वह निश्चयनय का विषय है और उसके आश्रय से जो एकाग्रता की पर्याय प्रकट हुई वह व्यवहारनय का विषय है। अज्ञानी जैसा व्यवहार मानता है, वैसा व्यवहार नहीं है। पर्याय में राग-द्वेष का अभाव होकर एकाग्रता की दशा प्रकट होती है, उसका ज्ञान करना वह व्यवहारनय का विषय है।

(७) शुद्ध आत्मा में अपूर्णता नहीं है, इसलिये वह पर का अभिमान नहीं करता, अतः आत्मा निर्मान है।

''निश्चयनय से सदा परम-समरसीभावस्वरूप होने के कारण आत्मा निर्मान है।''

आत्मा त्रिकाल उपशांत वीतरागीस्वरूप है। ऐसे समरसीभाववाला किसका अभिमान करे? निमित्त का, शुभराग का अथवा क्षायोपशमिकपर्याय का अभिमान तो है ही नहीं, किंतु मैं

आत्मा समरसीभावस्वरूप हूँ—ऐसा भी मान शुद्ध आत्मा में नहीं है, इसलिये आत्मा निर्मान है। जिसप्रकार विवाह के अवसर पर वर (दूल्हा) को गद्दी के ऊपर बिठलाते हैं और उसके माननीय पिता आदि नीचे बैठते हैं; उसीप्रकार यहाँ चैतन्य भगवान ऊँचे आसन पर विराजमान है, वीतराग भगवान वगैरह परपदार्थों से जुदा है, अपनी पर्याय से भी ऊँचा है। भगवान आत्मा किस बात में अधूरा है। कहा है न—

प्रभुजी तू सब बातें पूरा—
पर की आस कहा करे प्रीतम, तू काय बातें अधूरा।

(८) शुद्ध आत्मा अंतर्मुख होने के कारण निर्मद है, शुद्ध आत्मा एक ही उपादेय है।

"निश्चयनय से नि:शेषपने के अंतर्मुख होने के कारण आत्मा निर्मद है। उक्त प्रकार का (ऊपर कहे हुए प्रकार का) विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य निरावरण निजकारणसमयसार का स्वरूप उपादेय है।

शुद्ध आत्मा सदा अंतर्मुख ही रहता है, कभी बाहर आता ही नहीं। शुद्ध आत्मा का भान होने पर अंतरात्मा अंदर बढ़ता है, उसकी बात नहीं है, किंतु त्रिकाली ध्रुवस्वभाव सदा अंतर्मुखी ही है, अत: निर्मद है।

इसप्रकार उक्त कथनानुसार विशुद्ध, सहजसिद्ध, नित्य, किसी भी आवरण से रहित अपना कारणशुद्धात्मा अकेला ही अंगीकार करनेयोग्य है। पुण्य-पाप आदरणीय नहीं—शुद्धस्वरूप एक ही उपादेय है। इसप्रकार अपने शुद्धपरमात्मा का आश्रय करे तो धर्मरूपी कार्य प्रकट हो। इसलिये वह एक ही उपादेय है।

इसीप्रकार श्री अमृतचंद्राचार्यदेव प्रवचनसार गाथा १२६ की टीका में आठवें श्लोक द्वारा कहते हैं:—

इत्युच्छेदात्परपरिणतेः कर्तृकर्मादिभेद-
भ्रांतिध्वंसादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
संचिन्मात्रे महसि विशदे मुर्छितश्चेतनोऽयं
स्थास्यत्युद्यत्सहजमहिमा सर्वदा मुक्त एव॥८॥

इसप्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने से जो भ्रांति—उसके भी नाश द्वारा अंत में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को

उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में लीन रहा हुआ, अपनी सहज महिमा के प्रकाशित होने से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।

शुद्ध आत्मा विकार का कर्ता नहीं है, साथ ही वीतरागी परिणाम का कर्ता, कर्म आदि छह कारकों के भेद भी शुद्ध आत्मा में नहीं हैं।

यह साररूप श्लोक है। आत्मा का कल्याण करनेवाले को क्या कहना? आत्मा ज्ञानानंदस्वरूपी चैतन्यघन है—उसकी अवस्था में दया, दान, काम, क्रोधादि के परिणाम होते हैं—वे वास्तव में आत्मा नहीं हैं; आत्मा तो शुद्ध चिदानंदस्वरूप है—ऐसे भान और स्थिरता द्वारा परपरिणति उत्पन्न ही नहीं होती, उसे यहाँ परपरिणति का उच्छेद करना कहा है।

आत्मा परपदार्थों का अथवा परचैतन्य की अवस्थाओं का तो कर्ता नहीं है, क्योंकि वे सब परपदार्थ हैं, वे स्वयं अपनी-अपनी अवस्थारूप प्रतिसमय परिणमन करते हैं। तथा आत्मा की अपनी ही पर्याय में जो शुभाशुभ परिणाम होते हैं, उनका आत्मा कर्ता और वे विकार आत्मा के कार्य—ऐसा कर्ता-कर्मपना भी शुद्धस्वभाव में नहीं है। यहाँ तो उससे भी सूक्ष्म बात है।

आत्मा त्रिकाल शुद्ध है—ऐसे भान द्वारा जो वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, उसका कर्ता आत्मा है, वीतरागी परिणाम कर्म है, आत्मा के द्वारा वह वीतरागी परिणाम किया जाता है इसलिए आत्मा कारण है, स्वयं ही अपने को धर्मदशा प्रदान करता है इसलिए आत्मा संप्रदान है, अपने में से ही निर्मलता उत्पन्न होती है, इसलिए स्वयं अपादान है, और अपने ही आधार से निर्मलता होती है, इसलिए स्वयं अधिकरण है; इसप्रकार छह कारकों के भेद के लक्ष से धर्म होगा—ऐसा मानना वह मिथ्याशल्य है।

अहो! अत्यंत सूक्ष्म बात की है। शरीर, मन, वाणी, देव, शास्त्र, गुरु के लक्ष से तो धर्म है ही नहीं, पुण्य-परिणाम से भी धर्म नहीं; परंतु अपने आधार से वीतरागी परिणाम प्रकट होगा—ऐसे छह कारकों के भेदपूर्वक विचार करने से राग होता है, धर्म नहीं होता। आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु अभेद है, तथापि उसे भेदवाला मानना और उनके आधार से धर्म मानना वह भ्रांति है।

जो जीव छह कारकों की भेदबुद्धि टालकर शुद्ध चैतन्यतत्त्व को प्राप्त करता है, वह उसमें लीन रहकर मुक्तदशा को प्राप्त होगा।

जो जीव शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अवलंबन लेता है, उसको भेद उठते नहीं और पर-

परिणति उत्पन्न होती नहीं; अर्थात् उसने परपरिणति का नाश किया तथा कर्ता, कारण के भेदों की भ्रांति का नाश किया—ऐसे कहने में आता है। उस जीव ने शुद्ध आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लिया है।

लौकिक में पैसा पुण्य के कारण मिलता है, पुरुषार्थ के कारण नहीं मिलता; और पुरुषार्थ करने पर भी पापोदय होने के काल में वह पैसा कहाँ विलीन हो गया, यह पता भी नहीं चलता। परंतु यहाँ धर्म में तो एकसमय मात्र भी पुरुषार्थ बिना नहीं चल सकता। इस तरह सच्चे पुरुषार्थ से जो जीव शुद्धात्मा को प्राप्त करता है और ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में लीन रहता है, वह अपनी स्वाभाविक महिमा के प्रकाशन में सदा मुक्त रहेगा। पराश्रयबुद्धि-रागबुद्धि टालकर जो जीव स्वभावबुद्धि करता है, वह अपने स्वभाव में त्रिकाल लीन रहता हुआ अनंत काल शुद्ध रहेगा—उसको मुक्तदशा कहते हैं।

अब ४४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसंघातकात्मा
नित्यानंदाद्यतुलमहिमा सर्वदा मुर्त्तिमुक्तः।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम्॥६९॥

जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अंधकारसमूह का नाश किया है, जो नित्य आनंद आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है, जो सर्वदा अमूर्त है, जो अपने में अत्यंत अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है, उस भवभय को हरनेवाले मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को मैं वंदन करता हूँ।

त्रिकाल ज्ञानज्योतिरूप शुद्धभाव के आधार से मोक्ष प्रकट होता है, इसलिये मैं उस ऐश्वर्यवान स्वामी को वंदन करता हूँ।

इस श्लोक में मोक्षलक्ष्मी के स्वामी शुद्धस्वभाव को टीकाकार मुनिराज वंदन करते हैं। कैसा है शुद्धस्वभाव अथवा कारणपरमात्मा?

(१) जिसप्रकार सूर्योदय होने पर अंधकार का नाश होता है; उसीप्रकार शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता होने पर पुण्य-पापरूपी विकार उत्पन्न नहीं होता। शुद्धभाव कैसा है? ज्ञानज्योति है, ज्ञानरूप है, उसमें विकार का अनादि से अभाव है और ऐसा ही भान होने पर

पर्याय में विकार की उत्पत्ति नहीं होती, तब पापरूपी अंधकार का नाश किया—ऐसा कथन करने में आता है। मेरा आत्मा ज्ञानज्योति स्वरूप है—ऐसा अस्ति का ज्ञान होने पर उसमें अंधकार की नास्ति का ज्ञान भी हो जाता है। अस्ति का ज्ञान होना वह निश्चय है और नास्ति का ज्ञान होना वह व्यवहार है।

(२) जिससे मोक्ष-कार्य प्रकट हो वह कारणपरमात्मा कैसा है? नित्य आनंद, सुख, ज्ञान, चारित्र आदि अनंत शक्तियों का धारक है, और सम्यग्दर्शन का ध्येय है।

(३) शुद्ध आत्मा स्पर्शादिरहित अर्थात् सदा अमूर्त है।

(४) शुद्ध आत्मा अपने में सदा एकरूप रहता है, एकरूप शुद्ध है, इसलिये उत्तम शील का मूल है।

(५) ऐसे शुद्ध आत्मा में भवभय नहीं है। उसकी श्रद्धा करने से भवरहित दशा की प्राप्ति होती है। ऐसे मोक्षलक्ष्मी के स्वामी त्रिकाली शुद्धद्रव्य को मैं नमस्कार करता हूँ।

निमित्त से अथवा पुण्य-पाप के विकार से तो धर्म होता नहीं, एकसमय की शुद्ध पर्याय में से भी धर्म होता नहीं। शुद्धोपयोग धर्म है और वह धर्म पर्याय में है; किंतु शुद्धोपयोगरूप धर्म की पर्याय शुद्धोपयोगरूप पर्याय में से नहीं आती; वह तो त्रिकाल शुद्धभाव जो सदा एकरूप है, उसमें से प्रकट होती है।

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा बीस दिवसीय दौर

दिनांक ११-९-१९७९ से ३० सितंबर तक बीस दिन में ललितपुर, बीना, पिपरई, मुंगावली, चंदेरी, खनियाधाना, अशोकनगर, गुना, आरोन, राघौगढ़ तथा कुम्भराज में पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा वालों के आध्यात्मिक प्रवचनों का कार्यक्रम चला। समाज ने उत्साहपूर्वक लाभ लिया। इसी के साथ-साथ कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को पूर्व में लिखाई गई रकमों में से एक लाख पंद्रह हजार नगर प्राप्त हुए तथा करीब दश हजार की नवीन राशि लिखाई गई।

— माणिकलाल आर० गाँधी

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

अब अधर्म द्रव्य की बात करते हैं। गमन करते हुए जीव और पुद्गल जब स्वयं रुकें तब उनमें अधर्म द्रव्य निमित्त है।

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई॥१८॥

जो जीव और पुद्गल स्थित हैं, उनकी स्थिति में अधर्म द्रव्य सहकारी कारण है। जैसे—वृक्ष मुसाफिरों को प्रेरणा देकर जबरदस्ती से खड़ा नहीं करता, ठहराता नहीं है, परंतु ठहरने में निमित्त होता है; वैसे ही अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों को प्रेरणा से ठहराता नहीं, परंतु जो स्वयमेव ठहरे रहें, तब अधर्म द्रव्य उनको निमित्त है।

जो जीव और पुद्गल स्थिति सहित हैं, अधर्म द्रव्य उनकी स्थिति में सहकारी कारण है, जिसप्रकार छाया मुसाफिर की स्थिति में सहकारी कारण है। तथा जो जीव और पुद्गल स्वयं चलता होवे, उसको अधर्म द्रव्य कभी भी प्रेरणा से स्थित नहीं करता है। इसके लिए सिद्ध का दृष्टांत देते हैं।

जिसप्रकार स्वयं के आत्मज्ञान से उत्पन्न सुखामृतरूप परमस्वस्थ निजरूप में स्थित होने का निश्चय कारण स्वयं ही है—तो भी मैं सिद्ध समान हूँ—इसप्रकार सिद्ध की भक्ति करनेरूप विकल्पदशा स्वस्वरूप की स्थिति कराने में निमित्त है। और उस विकल्प में सिद्ध निमित्त हैं, इसलिए सिद्ध को निजस्वरूप में स्थिति होने पर बहिरंग सहकारी कारण कहा जाता है। उसीप्रकार अपने कारण गमनपूर्वक स्थित होते हुए जीव और पुद्गल में अधर्म द्रव्य निमित्त है। अब दृष्टांत का विस्तार करते हैं:—

स्वयं के आत्मज्ञान से उत्पन्न सुखामृतरूप परमस्वास्थ्य कहा—मैं आत्मा हूँ, पुण्य-पाप विकार हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो ज्ञानादि अनंत शक्तियों का स्वामी हूँ—ऐसे

आत्मज्ञान से सुख उत्पन्न होता है। किसी गुरु की कृपा से अथवा शास्त्र से ज्ञान होता है—यह बात दिमाग में से निकाल दी। वैसे ही शास्त्र का ज्ञान अथवा तत्त्व का ज्ञान, ज्ञान नहीं कहा है, परंतु आत्मज्ञान को ज्ञान कहा है। 'मैं आत्मा हूँ' इसप्रकार अस्तिपने के जोर से दूसरे तत्त्वरूप मैं नहीं हूँ—ऐसा ज्ञान आ जाता है। पुण्य-पाप उपाधियाँ हैं—उन रूप मैं नहीं हूँ, मैं तो त्रिकाली शुद्ध हूँ—इसप्रकार आत्मज्ञान से आनंद उत्पन्न होता है, अन्य कोई विधि से उत्पन्न नहीं होता है। आनंद कहो, शांति कहो, धर्म कहो—वह ही आत्मा का परमस्वास्थ्य है। तुम्हारी तंदुरुस्ती तुम्हारे शरीर में नहीं है, पुण्य-पाप के परिणामों में भी नहीं है—पुण्य-पाप का भाव तो राग है, दया पालूँ, दान करूँ, ऐसी वृत्ति होना रोग है; आत्मा की निरोग दशा नहीं है। शुद्ध आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता (चारित्र) से उत्पन्न हुए परमसुखामृतरूपी पिंड में आत्मा का स्वास्थ्य अथवा निरोगता रहती है। उसको धर्म दशा कहो, शांति का मार्ग कहो, निरोग दशा कहो—सब एक ही है। 'आरूग्ग बोहिलाभ।' यह पाठ लोगस्स में आता है। हे प्रभु! ऐसे आरोग्य का लाभ दीजिए-ऐसा इसका अर्थ है।

अज्ञानी जीव पराधीनता का पोषण कदम-कदम पर करता है। इसके बिना नहीं चल सकता ऐसा मानकर दुखी होता है या दुःख का अनुभव करता है। दुःख कहो या अधर्म कहो एक ही है, वह दुःख ही अधर्म है।

प्रश्न – यह दुःख तो हमारी आदत बन गया है ?

समाधान – नहीं, अज्ञानी जीव दुःख की दशा का वेदन नये-नये रसपूर्वक कर रहा है। उसका वह दुख होवे तभी तो वह आदत कही जाये, परंतु पूर्व की पर्याय तो रहती नहीं है, टल जाती है—इससे आदत नहीं रहती, किंतु नई-नई रुचि के कारण विकार में मजा माने बैठा है, इससे उसे दुःख भासित नहीं होता है। जैसे गंदगी के कीड़े को गंदगी में ही मजा आता है, वैसे ही अज्ञानी जीवों को जगत के पदार्थों में प्रीति होती है, यह सब दुःख का कारण है।

जिसको शांति चाहिए ही, उसको आत्मज्ञान द्वारा अपने आत्मा में से शांति प्रकट करनी पड़ेगी, शांति बाहर में कहीं भी नहीं है। लोग भी कहते हैं कि "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं"। अपने स्वभाव से चूककर परवश होकर पुण्य-पापादिभाव करता है, वह विष है, दुःख है, तथा अन्य के कारण से नहीं, स्वयं के ही कारण से है; परंतु अशुद्धता के काल में भी त्रिकाली

शुद्धस्वभावरूपी सुख की खान अंदर भरी पड़ी है। उसकी दृष्टि (लक्ष्य) करके आत्मा में स्थिरता करनी चाहिए, वह आनंद का कारण है।

जैसे सर्वार्थसिद्धि के देवों को तेतीस हजार वर्ष में आहार करने की इच्छा होती है, तो उनके कंठ में से अमृत झरने लगता है, उसके स्वाद से ही तृप्ति हो जाने के कारण वे कल्पवृक्ष की इच्छा नहीं करते हैं। वैसे धर्मी जीव को 'मैं शुद्ध चिदानंद हूँ' ऐसा भान है—उससे उत्पन्न हुए आनंद के बीच में परपदार्थों और पुण्य की रुचि नहीं होती है। जैसे मिठाई में तल्लीन हुए जीव को दूसरा कोई बुलावे तो उसे ख्याल में नहीं रहता, वैसे ही धर्मी जीव अपने आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए अमृतरस के स्वाद में दूसरों की याद नहीं करता है।

इसप्रकार निजस्वरूप में स्थित होने का कारण स्वयं ही है। अब उसके व्यवहारकारण कहते हैं। "मैं सिद्ध हूँ, जैसे सिद्ध अशरीरी हैं, शरीर और कर्म के विकार से रहित आनंदस्वरूपी हैं—वैसा ही मैं हूँ, सिद्ध की जाति और मेरी जाति एक ही है"—ऐसे विकल्पों के द्वारा विचार करता है। "राग की वृत्ति उठती है, परंतु वह मेरे त्रिकाली स्वरूप में नहीं है, अतः मैं शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य आदि अनंत गुणों को धारण करनेवाला हूँ।"

"तथा मेरा क्षेत्र शरीरप्रमाण है, लोकालोक में व्यापक नहीं है, लोकालोक में व्यापक हो तो बाहर से आनंद आना चाहिए। तथा बिच्छू के काटने पर उस क्षेत्र में मुझ को दुःख होता है (खबर पड़ती है), परंतु दूसरा जीव उस भाग को हाथ लगाये तो उसे दुःख नहीं होता, इससे आत्मा अपने शरीरप्रमाण है। और मैं नित्य हूँ, मेरा कभी नाश नहीं होता है, तथा मैं शुद्ध हूँ—ऐसा विचार पर्याय में होता है। पर्याय अनित्य है ऐसी भी सिद्धि होती है, पर्याय बदलने पर भी आत्मा द्रव्य और गुणों के कारण नित्य है इसलिए मैं नित्य हूँ।"

अब क्षेत्र की सिद्धि करते हैं। "मैं असंख्यप्रदेशी हूँ, एक परमाणु आकाश में जितनी जगह घेरता है, उसे प्रदेश कहते हैं—ऐसे मैं असंख्य प्रदेशवाला हूँ। मैं स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित हूँ, अभी भी अरूपी हूँ—ऐसा धर्मीजीव सिद्ध का विचार करके अपने स्वरूप का विचार करते हैं। विकल्पवाली दशा में सिद्ध निमित्त कहलाते हैं। विकल्प दशा होने में विकल्प अंतरंग सहकारी कारण हैं, और सिद्ध भगवान बहिरंग कारण हैं।

जिसप्रकार भव्यजीव की निजस्वरूप स्थिति में उपादान कारण वह स्वयं ही है और बहिरंग सहकारी कारण सिद्धभगवान हैं; उसीप्रकार जीव और पुद्गल स्थिति को प्राप्त करते

हैं, उसमें उपादान कारण स्वयं ही हैं तथा अधर्मद्रव्य निमित्त कारण है। जैसे सिद्ध जीवों को प्रेरणा करके स्वरूप में स्थित नहीं कराते हैं—परंतु जो स्वरूप में स्थित होते हैं, उनको निमित्त हैं; वैसे ही अधर्मद्रव्य जीव-पुद्गल को जबरदस्ती प्रेरणा करके स्थिर नहीं करता है—परंतु जो अपने कारण गमनपूर्वक स्थिर होता है, उसमें अधर्मद्रव्य निमित्त कारण है।

जैसे लोकव्यवहार में—जो मुसाफिर ठहरते हैं उनको पृथ्वी और छाया निमित्त कहलाती है, छाया और पृथ्वी जबरदस्ती उन्हें ठहराती नहीं हैं; वैसे अधर्मद्रव्य जबरदस्ती से नहीं ठहराता है, परंतु जब जीव और पुद्गल स्वयं ठहरते हैं, उनको निमित्त होता है।

इसप्रकार जैसे पर के कारण स्थिति नहीं है, वैसे ही परपदार्थ नहीं हैं—ऐसा भी नहीं है। निमित्त प्रेरक होकर स्थिति नहीं कराता है, ऐसा यथार्थ ज्ञान करना चाहिए।

इस तरह अधर्मद्रव्य का व्याख्यान पूरा हुआ। [क्रमशः]

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के भवन का शिलान्यास

जयपुर :- अभी तक टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय श्री टोडरमल स्मारक भवन में चल रहा है। अब उसके नये भवन का शिलान्यास १ दिसम्बर, १९७९ को है। तथा इसके साथ ही अनेक कार्यक्रम रखे गये हैं—जिनमें श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का पंचम अधिवेशन, महाविद्यालय का द्वितीय वार्षिकोत्सव, टोडरमल जयंती, अ० भा० युवा फैडरेशन का अधिवेशन आदि मुख्य हैं। यह कार्यक्रम ३ दिन - १ दिसंबर से ३ दिसंबर तक चलेगा। विस्तृत कार्यक्रम तैयार हो रहा है जो कि आगामी अंकों में प्रकाशित किया जायेगा।

— बाबूभाई मेहता

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– प्रथम अशुभराग टाले और शुभराग करे, पश्चात् शुद्धभाव हो – ऐसा क्रम है न?

उत्तर– नहीं भाई! यह क्रम ही नहीं है। प्रथम सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, पश्चात् एकदम शुभराग टल सकता नहीं, इसलिए पहले अशुभराग टलकर शुभराग आता है—यह साधक के क्रम की बात है।

प्रश्न– मार्ग का यथार्थ विधि का क्रम क्या है?

उत्तर– आत्मा अचिंत्य सामर्थ्यवाला है, उसमें अनंत गुण-स्वभाव हैं, उसकी रुचि हुए बिना उपयोग पर में से पलटकर स्व में आ सकता नहीं। पाप भावों की रुचि में जो जीव पड़ा है उसकी तो यहाँ चर्चा ही नहीं है। यहाँ तो पुण्य की रुचिवाला बाह्य त्याग करे, तप-शील-संयम पालन करे, द्रव्यलिंग यथार्थविधि धारण करे; तथापि जहाँ तक पर की रुचि अंतर में पड़ी है वहाँ तक उपयोग पर की ओर से पलटकर स्व-स्वभाव की ओर नहीं आ सकता। इसलिए पर-रुचि की दिशा बदलने पर ही उपयोग पर से हटकर स्व में आ सकता है। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।

प्रश्न– भगवान आत्मा आनंदस्वरूप है—इसप्रकार आत्मा के गुणों का विशद व्याख्यान आप करते हो, परंतु वह भगवान चला कहाँ गया-यह तो बतलाइए?

उत्तर– भगवान तो जहाँ है, वहाँ ही है। परंतु इस भगवान का इस जीव को भान नहीं है, इसलिए दृष्टि में आता नहीं। स्वयं भगवानस्वरूप कारणपरमात्मा है, ऐसा जिसको हृदय में जमता है, उसी को कारणपरमात्मा है। परंतु जिसको ऐसा जमता ही नहीं कि मैं परमात्मास्वरूप हूँ, उसके लिए कारणपरमात्मा कहाँ है? उसको तो राग और अल्पज्ञता ही है। जिसको कारणपरमात्मा का विश्वास जमता है, उसी को कार्यरूप में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट होता है।

प्रश्न– तो अज्ञानी को क्या करना ?

उत्तर– अज्ञानी को प्रथम वस्तुस्वरूप का सच्चा ज्ञान करके आत्मा का भान करना चाहिये। यही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का सच्चा उपाय है। शुभराग का क्रियाकांड करना सच्चा उपाय नहीं है।

प्रश्न– ज्ञानी तो व्यवहार को हेय मानता है, फिर ज्ञानी के व्यवहार का फल संसार क्यों ?

उत्तर– ज्ञानी का व्यवहार भी राग है और राग का फल संसार है। श्रावक को षट्आवश्यक, मुनि को पंचमहाव्रत का विकल्प होता है, आता है; उसको निश्चय का सहचर जानकर जिनवाणी में बहुत वर्णन किया गया है; परंतु इस राग का फल संसार है–ऐसा कहा है। जो जीव इस शुभराग से लाभ मानता है अथवा शुभराग करते-करते धर्म हो जायेगा–ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है; अत: संसार-भ्रमण करेगा ही।

प्रश्न– जिनवाणी में कथित व्यवहार का फल भी यदि संसार ही है तो उसके कथन से क्या लाभ ?

उत्तर– निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ अपूर्णदशा के कारण राग की मंदता में किस-किस प्रकार का मंद राग होता है; चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थानों की भूमिका में राग की क्या स्थिति होती है; पूजा, भक्ति, अणुव्रत, महाव्रतादि होते हैं; उनका व्यवहार बताने के लिए जिनागम में उसका कथन किया गया है; परंतु इस राग की मंदता के व्यवहार का फल तो बंधन और संसार है।

प्रश्न– द्रव्य में पर्याय नहीं है तो फिर पर्याय को गौण क्यों कराया जाता है ?

उत्तर– द्रव्य में पर्याय नहीं है; जो वर्तमान प्रकट पर्याय है – वह पर्याय, पर्याय में है। सर्वथा पर्याय है ही नहीं—ऐसा नहीं है। पर्याय है उसकी उपेक्षा करके, गौण करके, है नहीं—ऐसा कहकर, पर्याय का लक्ष्य छुड़ाकर, द्रव्य का लक्ष्य और दृष्टि कराने का प्रयोजन है। इसलिये द्रव्य को मुख्य करके, भूतार्थ है—उसकी दृष्टि कराई है और पर्याय की उपेक्षा करके, गौण करके, पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है—ऐसा कहकर उसका लक्ष्य छुड़ाया है। यदि पर्याय सर्वथा ही न होवे तो उसके गौण करने का प्रश्न ही कहाँ से हो ? प्रथम वस्तु का अस्तित्व स्वीकार करके ही उसकी गौणता बन सकती

है। इसप्रकार द्रव्य और पर्याय दोनों मिलकर ही पूर्णद्रव्य कहलाता है और वह प्रमाणज्ञान का विषय है।

प्रश्न– निश्चयश्रुतकेवली किसे कहते हैं ?

उत्तर– दर्शन–ज्ञान–चारित्र से आत्मा का अनुभव करता है, वह निश्चयश्रुतकेवली है। जिसमें से केवलज्ञान प्रकट होनेवाला है, ऐसे आत्मा को जिसने स्वानुभव से जाना वह परमार्थ से श्रुतकेवली है। उसको अल्पकाल में केवलज्ञान अवश्य होनेवाला है, इसलिये उसे परमार्थ से श्रुतकेवली कहा है। तथा इस आत्मा को जाननेवाली जो श्रुतज्ञान की पर्याय है उसमें 'ज्ञान सो आत्मा' ऐसा भेद पड़ता है, अतः उस ज्ञानपर्याय को व्यवहारश्रुतकेवली कहा। जो ज्ञानपर्याय सर्व को जानती है, वह स्व–पर की ज्ञायक ज्ञानपर्याय सर्वश्रुतज्ञान है—उसको व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं।

गाँव–गाँव में वीतराग–विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये

महापर्व दशलक्षण समाचार

कोटा (राज०) :– वीर संघ के तत्त्वावधान में दशलक्षणपर्व विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। स्थानीय दिगंबर जैन समाज के मान्य नेता श्री जम्बूकुमारजी बज, अध्यक्ष, दिगंबर जैन महासमिति पश्चिम मध्यांचल प्रदेश के विशेष आग्रह पर सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता यहाँ पधारे। आपके सारगर्भित, सरल, सुबोध एवं तात्त्विक प्रवचन प्रातः जैन औषधालय में एवं रात्रि को महात्मा गाँधी भवन में नियमित चलते थे, जिनसे हजारों श्रोताओं ने धर्मलाभ लिया। प्रवचन के पश्चात् सन्मतिशाला के छात्रों द्वारा रोचक संवाद प्रस्तुत किये जाते थे। इस अवसर पर लगभग ५०००) रुपए का सत्साहित्य बिका एवं आत्मधर्म में ६९ तथा जैनपथ प्रदर्शक के ७४ ग्राहक बने।

दिनांक २–९–७९ को अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में वीर युवा मंडल, बघेरवाल नवयुवक मंडल, वीर युवा परिषद् आदि अनेक संस्थाओं व समाज की ओर से नगर विकास न्यास के अध्यक्ष श्री हरिकुमारजी औदीच्य की अध्यक्षता में

एवं जिलाधीश महोदय के मुख्य आतिथ्य में श्री जम्बूकुमारजी बज द्वारा श्री बाबूभाई को अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। अंत में माननीय जिलाधीश महोदय ने सन्मतिशाला के संवादकर्ता बालकों को पुरस्कार वितरित किये। सभी कार्यक्रमों को सुंदर, सफल एवं प्रभावी बनाने का श्रेय वीर संघ के अध्यक्ष श्री जंबूकुमारजी एवं मंत्री श्री प्रतापचंदजी रांवका को है।

— युगल, एम० ए०

सतना (म०प्र०) :- विगत आठ वर्षों के अनेक प्रयत्नों के बाद जयपुर से डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल पधारे। प्रातः मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा रात्रि में दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। अंतिम तीन दिन प्रातः क्रमबद्धपर्याय पर आपके व्याख्यान हुए, जिनसे समाज का वातावरण क्रमबद्धमय बन गया। पूर्णिमा के प्रातः क्षमावाणी पर तथा रात्रि में 'भगवान महावीर और उनका अहिंसा सिद्धांत' पर विशाल आमसभा में आपके प्रभावी व्याख्यान हुए। श्री उमरावसिंहजी सेठिया, अध्यक्ष सतना सीमेंट वर्क्स ने अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ० भारिल्लजी के व्याख्यान की प्रशंसा करते हुए पूरे दिनों लाभ न ले सकने पर हार्दिक खेद व्यक्त किया। डॉ० भारिल्लजी के साथ श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के दो छात्र श्री सुदीपकुमार जैन एवं श्री नरेन्द्रकुमार जैन भी थे। इन्होंने प्रतिदिन तत्त्वार्थ-सूत्र पर प्रवचन किये एवं छहढाला की कक्षाऐं ली। रात्रि में इनके द्वारा बच्चों की कक्षाएँ भी ली गईं, जिनसे लगभग १०० छात्रों ने लाभ उठाया। स्थानीय छात्रों ने रात्रि में प्रवचन के बाद जयपुर बोर्ड की पाठ्यपुस्तकों में आगत संवाद प्रस्तुत किये। इस अवसर पर लगभग ४०००) रुपए का साहित्य बिका एवं आत्मधर्म के १४ आजीवन, ३३ त्रैवार्षिक तथा अनेक वार्षिक ग्राहक बने। जैनपथ प्रदर्शक के भी आजीवन व वार्षिक ग्राहक बनाए गए। वीतराग-विज्ञान पाठशाला तथा जैन स्कूल में जयपुर बोर्ड का पाठ्यक्रम चालू करने का निर्णय लिया गया।

— एस० के० जैन

अमरपाटन (म०प्र०) :- सतना में दशलक्षण समाप्त कर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ७ सितंबर, १९७९ को नवयुवक मंडल द्वारा आयोजित वर्णी जयंती समारोह में यहाँ पधारे। श्री नीरज जैन ने भारिल्ल साहब का परिचय दिया। श्री हुकमचंदजी 'नेताजी' सतनावालों की अध्यक्षता में आपका 'वर्णीजी एवं अहिंसा' पर मार्मिक व्याख्यान हुआ। इस अवसर पर लगभग ३५०) रुपये का साहित्य बिका एवं आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये।

रीवा (म०प्र०) :- अमरपाटन से होते हुए डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल स्थानीय जैन समाज के अनुरोध पर यहाँ भी पधारे। श्रीमती ज्ञानवती अवस्थी की अध्यक्षता में डॉ० भारिल्लजी का 'अहिंसा' पर व्याख्यान हुआ। यहाँ भी लगभग ३००) रुपये का सत्साहित्य बिका तथा आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये।

ललितपुर (उ०प्र०) :- आगरा से पंडित नेमीचंदजी पाटनी के पधारने से समाज में आध्यात्मिक वातावरण बना रहा। प्रातः मोक्षमार्ग प्रकाशक पर एवं रात्रि में दशलक्षणधर्म पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। मध्याह्न में शंका-समाधान का कार्यक्रम रहा। इस अवसर पर स्वाध्याय मंडल का चुनाव एवं वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति तथा साधर्मी वात्सल्य-फंड समितियों का गठन किया गया। श्री पाटनीजी द्वारा स्टेशन मंदिर पर नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर ५००) रुपये का साहित्य बिका तथा आत्मधर्म के ३० नवीन ग्राहक बने एवं शताधिक पुराने ग्राहकों ने तीन वर्ष का चंदा जमा कराया।

— अभय टडैया

जयपुर (राज०) :- जैनपथ प्रदर्शक के संपादक पंडित रतनचंदजी भारिल्ल के प्रातः बड़े मंदिरजी तेरापंथियान में समयसार पर, रात्रि ७.१५ से ८.१५ तक टोडरमल स्मारक भवन में दशधर्मों पर तथा इसके पश्चात् बड़े दीवानजी के मंदिर में भी दशधर्मों पर तात्विक प्रवचन चलते थे। स्थानीय समाज में आपके प्रवचनों से महती धर्मप्रभावना हुई। टोडरमल स्मारक भवन में पार्श्वनाथ नवयुवक मंडल द्वारा विभिन्न कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित किये गये। आदर्शनगर मुलतान दि० जैन मंदिर में बड़ौत से पधारे पंडित शिखरचंदजी के तीनों समय प्रवचन चलते थे। प्रातः ८ से ९ तक टोडरमल स्मारक भवन में भी आपके नियमित प्रवचन हुए। पर्व पर सत्साहित्य की भारी बिक्री हुई एवं आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाए गए। दिनांक ८ सितम्बर को राजस्थान जैन सभा द्वारा आयोजित सामूहिक क्षमापन पर्व पर श्री रतनचंदजी भारिलल ने विशाल जनसमुदाय के बीच आज के संदर्भ में इस पर्व में प्रचलित औपचारिकता से हटकर नए आयाम दिये। क्षमापन समारोह में राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंहजी शेखावत, स्वास्थ्यमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन तथा वित्तमंत्री श्री माणिकचंदजी सुराणा तथा पंडित मिलापचंदजी ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

— अखिल बंसल

मेरठ (उ०प्र०) :- विदिशा से पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। प्रतिदिन तीनों समय मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला तथा दशलक्षणधर्म पर आपके प्रवचन चलते थे। नगर के अन्य मंदिरों के अतिरिक्त हस्तिनापुर क्षेत्र पर भी आपके प्रवचन हुए। इस प्रसंग पर कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को १४,६१८) रुपये के नवीन वचन प्राप्त हुए जिसमें से १२,३६१) रुपये नगद प्राप्त हुए। अच्छी संख्या में सत्साहित्य भी बिका अंत में समाज की ओर से आपका अभिनंदन किया गया।

— हुकमचंद जैन

सहारनपुर (उ०प्र०) :- दिनांक ६-७-७९ से ८-९-७९ तक पंडित ज्ञानचंदजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला तथा समयसार पर विभिन्न मंदिरों में ७ प्रवचन हुए, जिससे समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। यहाँ से कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को ४६,२१७) रुपए के वचन प्राप्त हुए जिनमें से ३१,२२१) रुपए नगद प्राप्त हुए। आपकी अध्यक्षता में अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गई।

— मनमोहन जैन

दिल्ली :- दशलक्षण पर्व पर मेरठ जाते हुए पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा वाले २६ अगस्त को यहाँ रुके। स्थानीय मॉडलबस्ती में मोक्षमार्ग प्रकाशक पर आपका मार्मिक प्रवचन हुआ।

अजमेर (राज०) :- ग्वालियर से पंडित धन्नालालजी पधारे। प्रतिदिन मोक्षमार्ग प्रकाशक, जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। इस अवसर पर आत्मधर्म के त्रैवार्षिक ५० ग्राहक बने, सत्साहित्य भी अच्छी मात्रा में बिका।

— शिखरचंद सोनी

ऐत्मादपुर (उ०प्र०) :- अलीगंज निवासी पंडित गंभीरचंदजी वैद्य पधारे। प्रतिदिन चारों समय के प्रवचनों में मोक्षमार्ग प्रकाशक के आधार पर पंच परमेष्ठी का स्वरूप तथा सात तत्त्वों की भूलों को आपने मार्मिक ढंग से समझाया जिससे अच्छी धर्म प्रभावना हुई।

— अभयकुमार जैन

अशोकनगर (म०प्र०) :- अ०भा० जैन युवा फैडरेशन के केंद्रीय अध्यक्ष एवं टोडरमल सि० महाविद्यालय जयपुर के मेधावी छात्र पंडित जतीसचंदजी पधारे। प्रतिदिन समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। आपकी प्रेरणा से युवा फैडरेशन के ४० सदस्यों ने आजीवन रात्रिभोजन का त्याग किया एवं नित्य देवदर्शन का नियम लिया।

—हरकचंद बिलाला

भोपाल (म०प्र०) :- पंडित कन्नुभाई दाहोदवाले पधारे। समयसार, समयसार कलश तथा दश लक्षण धर्म पर आपके तात्विक प्रवचनों से समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा विभिन्न प्रतियोगिताऐं आयोजित की गईं तथा पुरस्कार बाँटे गये। इस अवसर पर २,६५०) रुपये का साहित्य बिका तथा आत्मधर्म और जैनपथ प्रदर्शक के लगभग ५० ग्राहक बनाये गये। **— बदामीलाल जैन**

सेलू (महा०) :- पंडित फूलचंदजी झांझरी उज्जैन से पधारे। प्रतिदिन मोक्षमार्ग प्रकाशक, समयसार तथा दशधर्मों पर आपके तात्त्विक प्रवचन चलते थे। लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका की कक्षा तथा शंका समाधान भी चलते थे। आपकी प्रेरणा से यहाँ वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गई। **— ताराचंद काला**

लोहारदा (म०प्र०) :- सोनगढ़ से पंडित नवलचंदभाई शाह पधारे। समयसार, जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, दशलक्षणधर्म एवं मोक्षमार्ग प्रकाशक पर हुए आपके तात्त्विक प्रवचनों से समाज में जागृति आयी। **— माणकचंद पाटोदी**

गंजबासौदा (म०प्र०) :- भोपाल से ब्रह्मचारी हेमराजजी पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, अनेकांत-स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान तथा नयचक्र पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। आत्मधर्म के ग्राहक भी बनाये गये। **— नेमीचंद एडवोकेट**

गुना (म०प्र०) :- पंडित विमलकुमारजी झांझरी उज्जैन से पधारे। प्रतिदिन समयसार तथा परमात्मप्रकाश पर प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा चलती थी। अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा विभिनन प्रतियोगिताऐं एवं अन्य कार्यक्रम आयोजित किये गये। **— कमल जैन**

रतलाम (म०प्र०) :- अशोकनगर से पंडित अमोलकचंदजी 'बंधु' पधारे। समयसार, मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए, समाज को अच्छा लाभ मिला। **— मोहनलाल छाबड़ा**

दिल्ली :- पंडित नंदकिशोरजी गोयल, विदिशा पधारे। मॉडलबस्ती तथा डिप्टीगंज दि० जैन मंदिरों में एक-एक समय प्रवचन चलते थे। बच्चों की कक्षाऐं भी चली। **— श्री राम जैन**

मंदसौर (म०प्र०) :- पंडित मणीभाई मुनाई वाले पधारे। गौतमनगर तथा शहर में

तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन आयोजित किये गये।
—सूरजमल गोधा

राघौगढ़ (म०प्र०) :– ललितपुर से पंडित चंपालालजी पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर प्रवचन एवं लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका पर कक्षाओं का आयोजन किया गया। ७-९-७९ को विमानोत्सव एवं कवि सम्मेलन भी हुआ। **— ताराचंद जैन**

जावरा (म०प्र०) :– इंदौर से पंडित केशरीमलजी बंडी पधारे। मोक्षमार्ग प्रकाशक, मोक्षशास्त्र तथा दशधर्मों पर आपके रोचक प्रवचन हुए। **— बसंतीलाल जैन**

खनियाधाना (म०प्र०) :– पंडित मिश्रीलालजी चौधरी गुना से पधारे। चारों अनुयोगों द्वारा आपने तत्त्व को प्रतिपादित किया जिससे समाज को अच्छा लाभ मिला।
— शिखरचंद पुजारी

भोगाँव (उ०प्र०) :– पंडित जगनंदशरणजी मैनपुरी से पधारे। समयसार कलश, रत्नकरण्ड श्रावकाचार एवं दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। **— योगेशचंद जैन**

गोरझामर (म०प्र०) :– टड़ा निवासी पंडित कोमलचंदजी पधारे। प्रतिदिन छहढाला, लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन चलते थे। यहाँ पाठशाला खोलने का निर्णय लिया गया। **— गोकुलचंद जैन**

अलोद (राज०) :– पंडित रिखबचंदजी मंदसौर वालों के पधारने से समाज में अच्छी जागृति हुई। दोनों समय मोक्षमार्ग प्रकाशक और दशधर्मों पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए। **— बाबूलाल जैन 'स्नेही'**

शहडोल (म०प्र०) :– स्थानीय चंद्रप्रभ दि० जैन मंदिर में प्रतिदिन रात्रि में डॉ० राजेन्द्र बंसल के धर्म के दशलक्षणों पर प्रभावी प्रवचन चलते थे। इस अवसर पर रोचक संगीत कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये। आत्मधर्म के १५ ग्राहक बनाये गये। **— राजेन्द्र जैन**

मालथौन (म०प्र०) :– ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा वालों के प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र, दशधर्म तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक पर प्रवचन एवं लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका की कक्षाऐं चलती थीं। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक भी बनाये गये। **— निर्मलकुमार चौधरी**

दाहोद (गुज०) :– पंडित रमणभाई रखियाल पधारे। आपकी प्रवचनशैली से स्थानीय मुमुक्षुओं ने आध्यात्मिक आनंद का रसपान किया। आत्मधर्म के १५ ग्राहक भी बनाये गये। **— बाबूभाई कन्हैयालाल**

लकड़वास (राज०) :- पंडित कुंदनमलजी पथरिया वालों के पधारने से समाज में तत्त्व के प्रति विशेष रुचि जागृत हुई। प्रतिदिन छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा रोचक संवाद प्रस्तुत किये गये। **— भूरालाल जैन**

गुढ़ा (उ०प्र०) :- खडैरी से पंडित ताराचंदजी पधारे। आपके प्रवचनों से अच्छी धर्म प्रभावना हुई। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। आत्मधर्म के १० ग्राहक बनाये गये। **— ज्ञानचंद जैन**

डबोक (राज०) :- अशोकनगर से पंडित कैलाशचंदजी पधारे। प्रतिदिन मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। स्थानीय जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी उपाश्रय में एवं निकटवर्ती ग्राम साकरोदा तथा महाराज की खेड़ी में भी आपके प्रवचन आयोजित किये गये। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। **— रणजीत शिवलाल सिंघवी**

फतेपुर मोटा (गुज०) :- टोडरमल सि० महाविद्यालय जयपुर से पंडित भानुकुमारजी पधारे। समयसार और मोक्षमार्ग प्रकाशक पर हुए आपके प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुई। युवा फैडरेशन की नवीन शाखा भी गठित की गई। **— कीर्तिकुमार मेहता**

भीलवाड़ा (राज०) :- ललितपुर निवासी पंडित रमेशकुमारजी पधारे। 'मैं कौन हूँ ?' आदि विषयों पर हुए प्रवचनों से हजारों व्यक्ति लाभान्वित हुए। विश्वमैत्री दिवस पर भी आपका व्याख्यान हुआ। प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं को पुरस्कार बाँटे गये। **— निहाल अजमेरा**

बड़नगर (म०प्र०) :- पंडित मोतीलाल जैन करेली से पधारे। आपके दशों दिन सारगर्भित प्रवचन हुए। स्नेह सम्मेलन का आयोजन भी किया गया। **— रामदयाल जैन**

बड़ागाँव (म०प्र०) :- पंडित छक्कीलालजी त्यागी एवं अन्य वक्ताओं के दशधर्मों पर प्रवचन हुए।

फिरोजाबाद (उ०प्र०) :- सागर से पंडित कपूरचंदजी पधारे। प्रतिदिन तीनों समय आपके मार्मिक प्रवचन चलते थे। समाज में अच्छी प्रभावना हुई। **— सूरजमल जैन**

गन्नोर (हरियाणा) :- पंडित जयकुमारजी जैन के पधारने से समाज में जागृति उत्पन्न हुई। छहढाला एवं दशलक्षणधर्म पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। **— तिलोकचंद जैन**

सेमारी (राज०) :- अशोकनगर से पंडित धर्मचंदजी शास्त्री पधारे। आपके तीनों समय प्रवचन व छहढाला तथा लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका की कक्षाऐं आयोजित की गईं। समाज को धर्मलाभ मिला।

मुरार (म०प्र०) :- पंडित शिखरचंदजी विदिशावाले पधारे। आपके प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुआ। पर्व के उपरांत दो दिन पंडित कपूरचंदजी करेली वालों के भी प्रवचन हुए। **— विनोद जैन**

बसमतनगर (महा०) :- पंडित दत्तोमंत लोखंडे के प्रवचनों से अच्छी धर्म प्रभावना हुई। पूज्य स्वामीजी एवं डॉ० भारिल्लजी के टेप द्वारा प्रवचनों से सैकड़ों भाई-बहिनों ने लाभ उठाया। एक दिन के लिए पंडित मधुकरजी भी पधारे। आपके मोक्षमार्ग प्रकाशक पर प्रवचन हुए। **— जी० डी० महाजन**

नागपुर (महा०) :- टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छात्र ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी पधारे। मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। पंडित राजकुमारजी एवं पंडित कस्तूरचंदजी के एक-एक दिन प्रवचन हुए। **— कुंदनलाल मोदी**

बयाना (राज०) :- जयपुर से पंडित हेमचंदजी 'चेतन' पधारे। मोक्षशास्त्र एवं दशलक्षणधर्म पर हुए आपके तात्त्विक प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। इस अवसर पर आत्मधर्म के तथा जैन पथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गयी। स्थानीय कन्या पाठशाला में वी० वि० परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया। **— नेमीचंद जैन**

अलीगढ़ (राज०) :- विभिन्न कार्यक्रमों के साथ दशलक्षण पर्व मनाया गया। प्रतिदिन स्थानीय वक्ताओं के प्रवचन हुए। युवा फैडरेशन के कार्यकर्ताओं द्वारा भक्ति-संगीत का आयोजन किया गया। **— राजगोधा**

भूलेश्वर-बम्बई (महा०) :- स्थानीय श्री चंद्रप्रभ दिगंबर जैन मंदिर में युवा विद्वान पंडित केशरीचंदजी 'धवल' पधारे। तत्त्वार्थसूत्र एवं रत्नकरण्डश्रावकाचार पर आपके हृदयग्राही प्रवचन हुए। अनेक उपनगरों के मंदिरों में भी आपके प्रवचन आयोजित किये गये।

जबेरा (म०प्र०) :- पर्यूषण पर्व पर तीनों समय स्थानीय विद्वान पंडित लखमीचंदजी

एवं पंडित कमलकुमारजी के प्रवचन एवं कक्षाओं का आयोजन किया गया। युवा फैडरेशन द्वारा भजन प्रतियोगिता आयोजित की गयी। — चक्रेश बजाज

रायपुर (म०प्र०) :- खुरई से पंडित फलचंदजी शास्त्री 'पुष्पेन्दु' पधारे। आपके प्रवचनों से धर्मप्रभावना हुई। — अरविंद एच. बटालिया

मुंगावली (म०प्र०) :- टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छात्र पंडित संतोषकुमारजी पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा दशलक्षणधर्म पर आपके प्रभावशाली प्रवचन हुए। आत्मधर्म के ४९ व जैनपथ प्रदर्शक के ८ ग्राहक बने। समाज के अनुरोध पर चंदेरी से लौटते हुए पंडित उग्रसेनजी बंडी भी पधारे। आपके पाँच समय प्रवचन हुए। — अनिल कुमार

रांझी-जबलपुर (म०प्र०) :- टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छात्र पंडित श्रेयांसकुमारजी शास्त्री पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला एवं दशधर्म पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए, जिससे समाज बहुत प्रभावित हुई। — अशोक जैन

दादर-बम्बई (महा०) :- पंडित नेमीचंदभाई के समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला तथा दशलक्षणधर्म पर प्रभावी प्रवचन हुए। चारों अनुयोगों पर आपके प्रवचनों में समाज ने भारी संख्या में उपस्थित होकर लाभ लिया। — हिम्मतलाल शाह

तलोद (गुज०):- पंडित झम्मकलालजी कुरावड़ वाले पधारे। छहढाला एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। एक दिन के लिए पंडित भानुकुमारजी भी पधारे। तीनों समय आपके मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन हुए।
— किरीट ए० शाह

उदयपुर (राज०) :- पंडित सुशीलकुमारजी राघौगढ़वाले पधारे। प्रतिदिन चार समय मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार, मोक्षशास्त्र एवं दशलक्षणधर्म पर हुए आपके प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुई। — उग्रसेन बंडी

बीना (म०प्र०) :- कोटा निवासी पंडित घासीलालजी पधारे। तीन दिन हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। — बाबूलाल जैन 'मधुर'

भानपुरा (म०प्र०) :- पंडित सूरजमलजी द्वारा धर्म के दशलक्षण पर डॉ० भारिल्लजी की पुस्तक पर प्रभावोत्पादक प्रवचन हुए। अन्य वक्ताओं के व्याख्यान भी आयोजित किये गये। — भंवरलाल सोनी

कटंगी (म०प्र०) :- स्थानीय विद्वान पंडित हल्केप्रसादजी वैद्य एवं डॉ० सनतकुमारजी जैन के प्रवचन हुए। अन्य कार्यक्रम भी आयोजित किये गये। **— एस० के० जैन**

बडवाह (म०प्र०) :- जबेरा से पंडित विनोदकुमारजी पधारे। छहढाला, लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा तत्त्वार्थसूत्र की कक्षाऐं चलीं एवं दशधर्मों पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए। युवा फैडरेशन द्वारा विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। **— तरुणकुमार जैन**

ग्वालियर (म०प्र०) :- पंडित कपूरचंदजी करेली वालों के सान्निध्य में पर्व सानंद मनाया गया। आपके प्रवचनों से बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। **— ज्ञानप्रकाश जैन**

कूंण (राज०) :- शहादरा से पंडित लक्ष्मीचंदजी पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र, लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा दशलक्षणधर्म पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। समाज में महती प्रभावना हुई। **— अध्यक्ष, दिगम्बर जैन समाज**

आरोंन (म०प्र०) :- मौ से पंडित शांतिकुमारजी पधारे। आपके तात्त्विक प्रवचनों से समाज में जागृति उत्पन्न हुई। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। **— विजय कौछल**

कलकत्ता (पं० बंगाल) :- टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के मेधावी छात्र पंडित अभयकुमारजी शास्त्री पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशलक्षणधर्म पर आपके सरल, सरस एवं प्रभावकारी प्रवचन हुए। युवावर्ग में विशेष उत्साह जागृत हुआ। युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गयी। **— घमंडीलाल गंगवाल**

महीदपुर (म०प्र०) :- लोहारदा निवासी पंडित छगनलालजी पहाड़िया पधारे। दशलक्षणधर्म, परमात्मप्रकाश एवं मोक्षशास्त्र पर आपके प्रवचन हुए जिससे सभी ने लाभ लिया। **— कल्याणमल**

देपालपुर (म०प्र०) :- पंडित शांतिलालजी सोगानी पधारे। मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशलक्षणधर्म पर प्रवचन एवं छहढाला और लघु सिद्धांत प्रवेशिका पर कक्षाओं का आयोजन किया गया। आपकी प्रेरणा से १५ वर्ष से बंद पाठशाला पुनः आरंभ की गयी। **— परमानंद जैन**

खंडवा (म०प्र०) :- पंडित टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के प्रतिभाशाली छात्र पंडित प्रदीपकुमारजी झांझरी पधारे। समयसार नाटक, मोक्षशास्त्र,

मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर आपके प्रवचन सुनकर श्रोता मंत्र-मुग्ध हो गये। बच्चों की कक्षायें भी आयोजित की गयीं। — जुगमंदरलाल जैन

एटा (उ०प्र०) :- मैनपुरी से लौटते हुए पंडित देवचंदजी साहित्याचार्य पधारे। ७ एवं ८ सितंबर को आपके तत्त्वार्थसूत्र पर सारगर्भित प्रवचन हुए। ९ सितंबर को पंडित रवींद्रकुमारजी कुरावली वाले पधारे। आपके प्रवचन हुए एवं कक्षायें भी आयोजित की गयीं। — कुसुमकुमार जैन

मलकापुर (महा०) :- खड़ेरी से पंडित गोविंददासजी पधारे। समयसार तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक पर आपके प्रवचन हुये। समाज ने उत्साहपूर्वक भाग लेकर तत्त्वलाभ लिया। — प्रेमचंद निरखे

आगरा (उ०प्र०) :- पंडित धर्मदासजी बड़ौत से पधारे। नगर के विभिन्न मंदिरों में आपके मर्मस्पर्शी प्रवचन हुए। ताजगंज में पंडित कैलाशचंदजी पाण्ड्या इंदौरवालों के प्रवचन हुए। आप दोनों विद्वानों के प्रवचनों से समाज में अभूतपूर्व प्रभावना हुई। — पदमचंद सर्राफा

सोलापुर (महा०) :- विदिशा से सेठ पंडित जवाहरलालजी पधारे। समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए जिससे यहाँ अभूतपूर्व आध्यात्मिक वातावरण बन गया। इस अवसर पर आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये।

— जीवराज हीराचंद शहा

इंदौर (म०प्र०) :- भोपाल निवासी ब्रह्मचारी हेमचंदजी पधारे। स्थानीय नेमीनगर में आपके समयसार, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशलक्षण धर्म पर प्रवचन हुए। जिससे समाज ने लाभ उठाया। युवावर्ग में विशेष प्रभावना हुई। 'जैनधर्म एवं विज्ञान' विषय पर आपका विशेष व्याख्यान हुआ। — जमनालाल जैन

मंडला (म०प्र०) :- छिंदवाड़ा से पंडित प्रबोधचंदजी पधारे। आपके प्रवचन एवं दशलक्षण धर्म की विवेचना से समाज में जागृति तथा धर्म की प्रभावना हुई। — तेजराज जैन

पाठकों के पत्र

देहरादून (उ०प्र०) से शीलवती जैन लिखती हैं :—

सितंबर अंक के संपादकीय में 'एक इंटरव्यू : कानजीस्वामी से'—कमाल का लेख है। क्रमबद्धपर्याय का विषय वास्तव में अलौकिक विषय है। इसके निर्णय से ही ज्ञायकस्वभाव का निर्णय हो जाता है। घर में बार-बार पढ़ने पर ही विशेषता लक्ष में आती है। आपके प्रश्नों की शैली एवं साहस प्रशंसनीय है। पूज्य स्वामीजी के विषय में ज्यादा कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। आगे भी इस लेखमाला को प्रवाहित करते रहें।

प्रतापगढ़ (राज०) से श्री दिनेशकुमार जैन लिखते हैं:—

आत्मधर्म के सितंबर अंक में प्रकाशित 'क्रमबद्धपर्याय' पर इंटरव्यू बहुत पसंद आया। इससे अनेक भ्रांतियों का निवारण हुआ।

सनावद (म०प्र०) से श्री शांतिलालजी शाह लिखते हैं:—

'क्रमबद्धपर्याय : एक इंटरव्यू पूज्य कानमीस्वामी से' पढ़ा। आपके इस संपादकीय लेख ने आत्मधर्म में चार चांद लगा दिये हैं। स्वामीजी के प्रश्नोत्तर का ज्ञान प्राप्त होते ही आत्मा में स्वानुभूति का मुमुक्षुओं के हृदय में संचार होता है तथा कई तरह के मिथ्या प्रचारों का खंडन भी हो जाता है।

भोपाल (म०प्र०) से पंडित रोशनलालजी गोयल लिखते हैं:—

पूज्य स्वामीजी ने इस काल में (जो विज्ञान का युग है) जैनधर्म की आत्मा 'क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत' का दिग्दर्शन कराया है। इस परम वैज्ञानिक सिद्धांत के द्वारा जगत में पनप रहे कर्तावाद का सम्यक् प्रकार निषेध होगा, आत्मार्थियों का कल्याणमार्ग सरल होगा एवं विश्व को वास्तविक सुख की दिशा का बोध होगा।

बम्बई (महा०) से श्री नरेन्द्र जे० शाह लिखते हैं:—

अब हिंदी आत्मधर्म बहुत ही उत्कृष्ट हो गया है। 'क्रमबद्धपर्याय' पर डॉ० भारिल्लजी के लेख बहुत सुंदर हैं। इस बार के अंक में तो पूज्य गुरुदेव के इंटरव्यू के माध्यम से जो बात कही गई है, वह तो बहुत ही अलौकिक है। वस्तु-स्वरूप को समझने में बहुत सरलता लगती है।

कोटा (राज०) से श्री 'युगलजी', एम.ए. लिखते हैं:—

आपकी क्रमबद्धपर्याय एवं पूज्य गुरुदेव का इंटरव्यू दोनों ही अत्यंत सुंदर हैं।

नसीराबाद (राज०) से वैद्य लक्ष्मीचंदजी जमौरया लिखते हैं:—

एक वर्ष से लगातार आत्मधर्म पढ़ रहा हूँ। भ्रमित मानव को आत्मचिंतन व ज्ञान का उद्घोष करानेवाली यह श्रेष्ठ पत्रिका है। इसे पढ़कर ज्ञानप्राप्ति की सदैव उत्कंठा बनी रहती है। डॉ० भारिल्लजी की सबल लेखनी तो उलझे हुए प्रश्नों की गुत्थी को क्षणभर में खोल देती है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचना पर अवश्य ध्यान दें :—

(१) ३१ दिसंबर तक जो भी ग्राहक बनेंगे उन्हें अभी ६ रुपये में ही ग्राहक बनाया जायेगा। कृपया शीघ्रता कर अधिक से अधिक लाभ उठावें। स्मरण रहे कि १ जनवरी, १९८० से आत्मधर्म का वार्षिक शुल्क ९ रुपये हो गया है।

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड के निरीक्षक पंडित रमेशचंदजी जैन (इटावावालों) द्वारा पाठशालाओं के निरीक्षण के दौरान अजमेर, देवली, ओलाद तथा झालावाड़ में नवीन पाठशालाऐं खुली हैं। अजमेर में श्री सुभाषचंदजी जैन एम.बी.बी.एस., आलोद में श्री बाबूलालजी जैन तथा झालावाड़ में श्री ज्ञानचंदजी जैन पढ़ायेंगे।

इसी कार्यक्रम में श्री बाहुबली दिगंबर जैन पाठशाला नसीराबाद, श्री शिवसागर बाल मंडल ब्यावर, तथा श्री महावीर दिगंबर जैन पाठशाला बूँदी (राजस्थान) में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम पढ़ाना स्वीकृत किया गया। इसके अतिरिक्त श्री के.डी. जैन हायर सैकेण्डरी स्कूल, मदनगंज-किशनगढ़, वीतराग-विज्ञान पाठशाला लाखेरी तथा इंदरगढ़ में पाठ्यक्रम पुनः प्रारंभ कराया।

निरीक्षक महोदय ने सावर, केकड़ी, कोटा, वाराँ, रूठियाई, राघौगढ़, पिड़ावा में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण भी किया। **— मंत्री**

फार्म भरकर भेजें

फरवरी, ८० के प्रथम सप्ताह में होनेवाली परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये प्रवेश फार्म भरकर भेजने की अंतिम तिथि १ नवंबर ७९ है। सभी संस्थाओं को खाली फार्म भेजे जा चुके हैं, अतः अंतिम तिथि से पूर्व भरकर भेज दें। जिन्हें फार्म न मिले हों वे बोर्ड कार्यालय जयपुर से मंगा लेवें।

मंत्री, वी० वि० वि० परीक्षा बोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आवश्यकता है :— निम्न स्थानों पर ऐसे विद्वान अध्यापकों की जो पाठशालाओं में बच्चों को धर्म पढ़ा सकें। वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर से प्रशिक्षित अध्यापकों को प्राथमिकता दी जाएगी। वेतन योग्यतानुसार। संपर्क करें:—

- अध्यक्ष, पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, मु०पो० बजरिया-बीना (सागर) म०प्र०
- डॉ० अरुणकुमार जैन, महावीर दवाखाना, कुशलगढ़ (राज०)
- डॉ० सनतकुमार जैन, मु०पो० कटंगी (जबलपुर) म०प्र०
- श्री विजय कौछल द्वारा श्री फूलचंद चंपालाल जैन, मु०पो० आरोन (गुना) म०प्र०
- श्री कपूरचंद अजमेरा मलिकपुर वाला, श्री दिगंबर जैन मंदिर सीवाड़-बाकलीवालान, किशनपोल बाजार, जयपुर ३०२००३
- चौधरी गोटीलाल जैन, मु०पो० पिपरई गाँव (गुना) म०प्र०

मित्र के नाम एक पत्र

बिजोलिया

दिनांक २८-७-७९

प्रिय अशोक लुहाड़िया,

जयजिनेन्द्र !

तुम्हारा पत्र मिला।

तुम्हारा धर्म-साधन, पठन-पाठन, तत्त्वचर्चा, स्वाध्याय व शिक्षण आदि अच्छी तरह से चल रहा होगा। हमारा भी हमारी योग्यतानुसार स्वाध्याय-पठन, तत्त्वचर्चा चल रही है। ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव का स्वाध्याय मैं किया करता हूँ, वह तो अमूल्य हीरा है। क्रमबद्धपर्याय मुझे ठीक बैठ गयी है। मेरा तो जीवन ही और तरह का हो गया है। मैं अज्ञानतावश तत्त्व का विरोध करता था, किंतु अब मुझे सत्य समझ में आया है। मैं विरोधियों के चक्कर में अब आनेवाला नहीं। मैं इस वर्ष वीतराग-विज्ञान भाग १ व २ की परीक्षा दूँगा। यहाँ प्रातः स्वाध्याय मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार से शुरु की थी। अब नौवें अधिकार में मोक्षमार्ग का स्वरूप चल रहा है। शाम का रयणसार पूरा हो गया है। अब ज्ञानार्णव (आचार्य शुभचंद्रकृत) रखेंगे। मैं आत्मधर्म को आदि से अंत तक पढ़ता हूँ। क्रमबद्ध के लेख पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है, जैनपथ प्रदर्शक भी पढ़ता हूँ। सम्यग्ज्ञान में खुला विरोध आता है। अब मैं उसे पढ़ना भी पसंद नहीं करता। प्रकाश तो तुम्हारा मित्र है, उसे तत्त्व की बात नहीं रुचती। सच्चा मित्र वही है जो तत्त्व समझे; तुम उसे भी तत्त्व समझाने का प्रयत्न करो। वह स्वाध्याय में भी कम आता है, व पाठशाला भी नहीं जाता है। लड़कों की संख्या भी कम है। पूज्य कानजीस्वामी, पंडितजी साहब (डॉ० भारिल्लजी), व तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूल सकता। तुमने मुझे सही रास्ता बताया है। तुम पढ़ाई, स्वाध्याय व तत्त्वचर्चा में बराबर उपयोग लगाना। तुम्हारा अहोभाग्य है जो ऐसे विद्वानों की गोष्ठी का सत्समागम प्राप्त हुआ है। हमारा कब ऐसा शुभ दिन आयेगा जब सोनगढ़ जाकर ऐसे विद्वानों के समक्ष बैठकर तत्त्वचर्चा में भाग ले सकूँगा। मुझे अब लौकिक पढ़ाई रुचती नहीं है। मैं दसवीं कक्षा पास करके जयपुर टोडरमल महाविद्यालय में आ रहा हूँ। आत्मधर्म भी आत्मकल्याण के लिए एक उत्तम मार्ग बताता है। डॉ० भारिल्ल साहब को हमारा जयजिनेन्द्र कहना।

तुम्हारा मित्र

भानुकुमार बगड़ा

[नोट :- यह पत्र टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के विद्यार्थी श्री अशोक लुहाड़िया को उनके मित्र श्री भानुकुमार बगड़ा ने लिखा है। — संपादक]

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४